डॉ० रामविलास चौधरी प्रणीतम्

# अद्भुतपाणिग्रहणम्

[ हिन्दी अनुवादयुतम् संस्कृत व्याख्या सहितम् ]

व्याख्यात्री
श्रीमती ध्रुवकुमारी चौधरी

सुधांशु प्रकाशनम्

# अद्भुतपाणिग्रहणम्

प्रणेता

**डा० रामविलास चौधरी**

साहित्यवेदान्तधर्मशास्त्राचार्यः, साहित्यरत्न, एम०ए०, बी०एड०, एल०एल०बी०,
विद्यावारिधि (पीएच० डी०), (लब्धानेकस्वर्णपदकः)।
संस्कृतविभागाध्यक्षः, बिहार नेशनल कॉलेज, पटना।
(पटना विश्वविद्यालयस्य)

व्याख्यात्री

**ध्रुवकुमारी चौधरी**

साहित्याचार्य, एम० ए० द्वय (संस्कृत-हिन्दी), एम०एड०,
अध्यापिका, डी० बी० आर० के० जालान इण्टर स्कूल, पटनासिटी-९

**सुधांशु प्रकाशनम्**

**पटना**

सुधांशु प्रकाशन
ध्रुवविलास सदनम्
गुलबीघाट, महेन्द्रू
पटना—८००००६



मूल्य रु० १६-००

पुस्तक प्राप्ति स्थान
मोतीलाल बनारसीदास
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
अशोक राजपथ, पटना-४

श्री सुधांशु शेखर, सुधांशु प्रकाशन, ध्रुवविलास सदनम्, गुलबीघाट, महेन्द्रू, पटना-६ द्वारा प्रकाशित तथा चन्द्रोदय प्रेस, पटना-४ द्वारा मुद्रित।

# पुरोवाक्

गजाननं निजपितरौ रामेश्वरीशीतलचतुर्धरिणौ ।
रामकरणशर्माख्यान् तान् गुरून् नित्यं नमामि च ॥

विशाले-संस्कृत-काव्य-जगति बहुसंख्यकानि रूपकाणि सहृदयानां मनांसि रञ्जयन्ति । ऐतिहासिकदृष्ट्या नवमशताब्द्या (कविराजराजशेखराद्) अनन्तरं काव्यस्यान्यक्षेत्रमिव नाट्यसाहित्यमपि ह्रासपथमुपजगाम । यद्यपि कालान्तरेऽपि शक्तिभद्रजयदेवप्रभृतिभिः कविभिः नाटकानि प्रणीतानि किन्तु न तत्र तादृशी प्रमोदवाहिनी नाट्यशैली चित्तचमत्कृतिश्चानुभूयते सामाजिकैः । तेषां संख्यापि नातिभूयसी । स्वातन्त्र्योत्तरे भारते यद्यपि संस्कृतशिक्षाह्रासक्रमो न निरुद्धस्तथापि केन्द्रीयसर्वकारतः प्रोत्साहनम्प्राप्य संस्कृतसेवापरायणा विद्वांसः साहित्यनिर्माणे रूचिपराः सन्तो महाकाव्यशैल्यां बहूनि चरितकाव्यानि श्रीदेवीचरित-सुरथचरित-गाँधिचरित-नेहरूचरित-सुभाष-चरितादीनिं निर्माय सुरभारती-भाण्डारं संवर्द्धयामासुः । तत्रापि नाटकानामल्पीयसी संख्या दरीदृश्यते ।

आधुनिक-समालोचकानाम्मतानुसारं साहित्ये समकालीना समस्या स्थितिश्च चित्रिता भवेदित्यपेक्ष्यते । सामाजिक-समस्यामभिलक्ष्य सम्प्रति काव्यानि रच्यन्ते । यद्यप्येवंविधानि समस्यामूलकानि काव्यानि नोत्तमकोटिकानि गण्यन्ते किन्तु सामाजिक समस्य मुपेक्ष्य नेदानीं सफलं ग्राह्यं लोकाकर्षकञ्च काव्यं कर्तुं शक्यते । एतदद्भुतपाणिग्रहणाख्यं नाटकमस्यामेव दिशि कश्चन प्रयासो नूतनः ।

समाजे विविधकारणैः पुरूषस्य प्राधान्यं प्राचीनकालादेव परिलक्ष्यते । यद्यपि स्त्रीः [illegible]

सम्बोध्यते किन्तु प्रारम्भिके जीवने सा पितुश्चिन्तायाः हेतुर्भवति। तेनैव प्रोक्त केनापि चिन्तकेन—

**"जननसमये बहुप्रवादिका सम्प्रदानसमयेऽर्थहारिका।**
**यौवनेऽपि बहुदोषकारिका दारिका हृदयदारिका पितुः॥"**

पुत्र्या उत्पत्तिकाले परिजनाः पुरजानाश्च विषण्णाः भवन्ति। अनेकासु पुत्रीषु जातासु निजं भाग्यं दूषयन्ति जनाः। तत्र चिन्तायाः प्रधानं कारणं भवति पुत्र्या विवाहकाले जायमानं कष्टम्। योग्यवरान्वेषणे गच्छति कालो महान्। महता कष्टेन कालेन च प्राप्तेऽपि योग्यवरे वरस्य पितुरभिभावकस्य वा स्वीकृतिर्न भवति सरला। बहुप्रयासेन लब्धायां तत्स्वीकृत्यां यौतुकं भवति प्रबलं बाधकम्। प्रचुरयौतुके च दत्तेऽपि पुत्र्याः श्वसुरालये जनाः पुनः किं किं वस्तु याचिष्यन्ते कथं सन्तुष्टा भविष्यन्ति केनोपायेन पुत्रीम्प्रति समुचितं व्यवहारं करिष्यन्तीति चिन्ता कन्यायाः पितुर्मातुश्च हृदये सदा विराजते। अतः सत्यमेवोक्तम्—

**"पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।**
**दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥"**

कन्याविवाहे जटिलतां कठिनताञ्च शिथिलयितुं प्रेमविवाहस्यान्तर्जातीय-विवाहस्य च प्रचलनमङ्गीकरणञ्च विचारका वाञ्छितोपायरूपेणाधिमन्यन्ते। आशायामस्यामेवेदं कृतिकुसुमं ससङ्कोचमुपायनीक्रियते वितते संस्कृतकाव्य-कानने। यथा ज्ञायते यत्कमलवकुलमालतीयूथिकामल्लिकाप्रसूनैरेव न काननं स्वकीयांसुषमां पुष्यति किन्तु करवीरकरीलादीनि कटुकुसुमान्यपि तच्छोभावृद्धय एव भवन्ति। एवमेव कालिदास-भवभूति—प्रभृतीनां ललितगम्भीराणि भाव-पूर्णानि च नाटकानि पाठं पाठं दर्शं दर्शं च सहृदयसामाजिका मधुरस्वाद-परिवर्तनार्थमीदृशमल्पकलेवरं लघु भावयुतमपरिपक्ववर्ण्यविन्यासञ्च काव्यं पठितुं द्रष्टुञ्च प्रवृत्ता भविष्यन्तीत्याशासे। यतो हि पद्मरागं धारयन्तो गुणग्राहिणो जना न जातु विद्रुममुपेक्षन्ते।

किं बहुना, कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि विषये वा गुणदोषाधिगमे द्रष्टुः दृष्टिरेव भवति प्रमाणम्। तस्य दृष्टिश्चेद्गुणान्वेषिणी सकले हि विषये स गुणमधि-

गच्छत्येव। रुचिश्चेद् दोषदर्शिका गुणान्वितेऽपि विषये स दोषान् अन्विष्यत्येव। तत्रापि दोषदर्शकानां संख्यातिभूयसी गुणग्राहिणाञ्चाल्पीयसी। यथोक्तं भर्तृहरिणा—

**मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-**
**स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।**
**परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं।**
**निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥**

तेन गुणान्वेषिणां सतां नित्यं क्षमाशीलतया दोषैकदृशामसतां छिद्रान्वेषण-परतया क्षमाप्रार्थनामन्तरैव समापयामि स्वामिमां पुरोवाचम्। यैः विद्वद्भिः सुहृद्भिश्चैतन्नाटकरचनासन्दर्भे प्रकाशनमार्गे च निजसम्मत्या सहयोगः कृतस्तान् सकलान्प्रति (नामोल्लेखनं विनैव) कृतज्ञतां विज्ञापयामीति।

विदुषां विधेयः
रामविलास चौधरी

महाशिवरात्रिः
सम्वत २०४६

# संक्षिप्तकथासारः

अद्भुतपाणिग्रहणस्य नायकः सोमदत्तो ब्राह्मणकुलोत्पन्न आदर्शवादी प्रगतिशीलो रमणीयाकृतिश्च युवा विद्यते। विद्याधनोऽयं प्रत्यहं पुस्तकालयं गत्वाधीते। तस्य वर्गेऽधीयाना श्यामा अनुसूचितजातीया महाधना च भूत्वापि तम्प्रत्यनुरज्यते।

श्यामाया एका सखी सुनयना स्वल्पविभव-ब्राह्मणस्य ब्रह्मदत्तस्य पुत्री वर्तते। पितुः सेवापरायण सा अध्ययनेऽपि श्रमते। धनसम्पन्नः श्वपचजातीयश्च छात्रः कान्तिरामस्तां प्रीणाति। एकदा श्यामया साकं गृहमागतं कान्तिरामं विलोक्य ब्रह्मदत्तस्तस्य गुणैः प्रसन्नः प्रभावितश्च जायते। श्यामा तान् सर्वान् निजजन्मोत्सवसमारोहे निमन्त्रयति।

श्यामाया जन्मदिवसे तस्याः पिता राजदत्तः समागतातिथीनां मनोविनोदाय मधुरं गीतं गातुं सोमदत्तं निवेदयति। सोमदत्तस्तत्र श्यामायाः सहभागितामपेक्षते। पितुराज्ञया श्यामा सोमदत्तेन समं गायति गानम्। तयोः भावपूर्णमधुरगानेन जातेषु सकलेषु प्रमुदितेषु राजदत्तः यथेष्टं वस्तु याचितुं सोमदत्तं प्रेरयति। अनुकूलमवसरं विज्ञाय सोमदत्तः श्यामामेव सङ्गिनीरूपे प्राप्नोति। कान्तिरामस्याभिलाषं ज्ञात्वा श्यामासोमदत्ताभ्यां प्रार्थितो ब्रह्मदतः सुनयना-कान्तिरामयोः पाणिग्रहणमनुमोदते। भरतवाक्येन नाटकं सम्पूर्णतां याति।

# अवतारणा

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।

मानव मन को सद्यः विमुग्ध कर लेने वाले विषयों में कला का स्थान सर्वोपरि है। कलाकार की मानसिक अभिव्यक्ति की मूर्त परिणति ही कला है। यह प्रकृति की अनुकृति है। इसका वर्गीकरण दो रूपों में किया गया है—ललित कला एवम् उपयोगी कला। ललित कला का मूल आधार सौन्दर्य का निखार है तो उपयोगी कला लोकोपयोगिता मूलक है। ललित कला को पाँच भागों में विभक्त किया गया है—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला, और काव्यकला। इनमें जो (कला) जिस (कला) के बाद उल्लिखित है वह उस (कला) से श्रेष्ठतर मानी गयी है। फलतः इनमें काव्यकला की महत्ता सर्वाधिक है।

काव्य के प्रधान तत्त्व या आत्मा के विषय में विवेचन करने वाले आचार्यों की एक लम्बी परम्परा है जो छः सम्प्रदायों में विभक्त है। ये सम्प्रदाय हैं—रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य। अलंकार-शास्त्र के आदिम आचार्य भरत ने अपनी रचना 'नाट्यशास्त्र' में रस को काव्य (नाटक) में प्रधान तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि उनकी यह मान्यता नाटक या दृश्यकाव्य के सन्दर्भ में थी, किन्तु परवर्ती आचार्यों ने श्रव्य काव्य में भी रस की स्थिति प्रधान रूप में स्वीकृत की जिससे 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' का उद्घोष उभयविध काव्य के लिये प्रतिफलित हुआ।

काव्य में इसकी प्रधानता प्राचीन काल से ही अंगीकृत होती रही है। अग्निपुराण में भी कहा गया है—

"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।"

अर्थात् वाणी के चातुर्य की प्रधानता होने पर भी काव्य में जीवन भूत रस ही है। व्यक्ति-विवेककार महिम भट्ट भी मानते हैं कि काव्य के आत्म-भूत सङ्गी (स्थायी) रसादिक हैं, इसमें तो किसी को विवाद ही नहीं—

**काव्यस्यात्मनि सङ्गिनि रसादिरूपे न कस्यचिद्विमतिः)।**

आचार्य मम्मट भी 'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः'—इस कारिका के द्वारा रस को काव्य का अङ्गी मानते हैं।

काव्य (नाटक) में रस का प्राधान्य प्रतिपादित करते हुए आचार्य भरत ने रस की निष्पत्ति के सन्दर्भ में कहा है—

**"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"**

अर्थात् विभाव, अनु भाव और संचारी या व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस वाक्य में 'संयोग' और 'निष्पत्ति'—ये दोनों शब्द व्याख्या सापेक्ष हैं जिनका विवेचन अनेक आचार्यों ने किया है। यद्यपि इन व्याख्याकारों की रचना उपलब्ध नहीं है फिर भी परवर्ती आचार्यों द्वारा उनके मतों का जो उल्लेख किया गया है वे ही आधार भूत हैं। भरत सूत्र के प्रथम व्याख्याता हैं—भट्टलोल्लट। रस के विषय में ये उत्पत्तिवादी सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक हैं। इनके मत में सीता को देखकर राम के हृदय में एक मनोहर भाव अंकुरित होता है जो अनुकूल परिस्थितियों में पुष्ट होकर प्रेम का रूप धारण करता है। इससे राम और सीता के हृदंय में उत्पन्न आनन्द ही रस है। यह रस राम की अवस्थाओं के अनुकरण करने वाले नर में भी उत्पन्न होता है। इस रसोत्पत्ति में विभाव, अनु भाव तथा संचारी भाव सम्मिलित रूप से मिलकर कारण बनते हैं। स्थायी भाव को दर्शक के हृदय में अंकुरित करने का श्रेय विभाव को है।

इस मत में दर्शक तथा अभिनय में सम्बन्ध नहीं बताया गया है। रस यदि राम में या अनुकर्त्ता नट में उत्पन्न होता है तो दर्शकों का उससे क्या सम्बन्ध है। दर्शक को आनन्दोपलब्धि के बिना अभिनय देखने में व्यग्रता

क्यों होगी ? इन प्रश्नों का समुचित उत्तर नहीं मिल पाता। अतः भट्टलोल्लट का मत ग्राह्य नहीं हुआ।

रस सूत्र के दूसरे व्याख्याता शंकुक का मत अनुमतिवादी कहलाता है। ये रस को अनुमान का विषय मानते हैं। इनके अनुसार कुशल अभिनेता के स्वाभाविक एवं रोचक अभिनय को देखकर आनन्दमग्न दर्शक उस अभिनेता नट को राम से अभिन्न समझने लगते हैं। यह अभिन्नता 'चित्रतुरग' न्याय के ऊपर आश्रित होती है। जैसे चित्र में चित्रित तुरग वास्तविक तुरग से भिन्न होने पर भी उसी की प्रतिकृति होने से भौतिक तुरग से अभिन्न माना जाता है, उसी प्रकार राम की भूमिका निभाने वाला नट भी राम से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध रखता है अतः राम में उत्पन्न रस को अनुमान के द्वारा अभिनय पटु नट में भी आरोपित किया जाता है। दर्शक समुदाय इस रस को अनुमान के द्वारा ग्रहण करता है और आनन्द उठाता है। यहाँ 'संयोगात्' का अर्थ है 'गम्यगमक भावात्' और 'निष्पत्ति' का अर्थ है—अनुमिति।

इस मत में अनुमान से आनन्दप्राप्ति बतायी गयी है जो अनुभवगम्य नहीं है, फिर नट के द्वारा प्रदर्शित तथा उस (नट) में अनुमित रस दर्शकों के लिये उपकारी नहीं हो सकता है।

रस के तीसरे व्याख्याता भट्ट नायक भुक्तिवादी आचार्य हैं। रस व्याख्या में ये दर्शक की भूमिका को स्वीकार करते हैं। ये काव्य में तीन व्यापार मानते हैं—अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा के द्वारा शब्द का अर्थ ज्ञात होता है। भावकत्व व्यापार के द्वारा नाटकों में अभिनीत पात्र अपने ऐतिहासिक तथा व्यक्तिगत निर्देश का त्यागकर सामान्य व्यक्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है। राम को वनवासी के रूप में न लेकर सामान्य रूप से एक शौर्यमण्डित नेता के रूप में लिया जाता है। इसे साधारणीकरण कहते हैं। भोजकत्व व्यापार के द्वारा दर्शक रस का भोग करता है तथा इस अवसर पर उसके हृदय में राजस तथा तामस भावों को दबाकर सात्त्विक भाव का ऐकान्तिक उदय हो जाता है। जिससे रस भुक्ति की दशा उत्पन्न होती है।

इस मत के अनुसार सूत्र में 'संयोग' का अर्थ है भोज्य-भोजक या भाव्य-भावक सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ है भुक्ति। यह मत रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के बहुत कुछ अनुकूल है। साधारणीकरण सिद्धान्त इनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

इस मत में दो अतिरिक्त व्यापार—भावकत्व तथा भोजकत्व की कल्पना की गयी है जो निराधार तथा अनावश्यक है।

रस सिद्धान्त के चौथे व्याख्याता हैं, अभिनवगुप्त। ये अभिव्यक्तिवादी आचार्य हैं। इनके अनुसार सामाजिक गत स्थायिभाव ही रसानुभूति का निमित्त होता है। मूल मनःसंवेग अर्थात् वासना या संस्कार रूप में रति आदि स्थायिभाव सामाजिक की आत्मा में स्थित रहता है। वह साधारणीकृत रूप से उपस्थित विभावादि सामग्री से अभिव्यक्त या उद्बुद्ध हो जाता है और तन्मयी भाव के कारण वेद्यान्तर के सम्पर्क से शून्य ब्रह्मास्वाद के सदृश परमानन्द रूप में अनुभूत होता है। रस की अभिव्यक्ति के समय भी अनुभवकर्त्ता अपने आपको भी सामान्य रूप में ही ग्रहण करता है। अनुभव के समय वह समझता है कि जितने सहृदय हैं उनके हृदय में उस रस की अनुभूति समान रूप से होती है।

रस आनन्द स्वरूप है तथा अलौकिक है। लोक में जो वस्तुएँ भय या शोक उत्पन्न करती हैं, काव्य में वर्णित होने पर वे अलौकिक रूप धारण कर लेती हैं तथा आनन्द का उद्बोधन करती हैं।

यह रस परवर्ती आचार्यों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया। अलंकार वादियों ने रसाभिव्यक्ति के लिये 'रसवत्' अलंकार की सत्ता स्वीकृत की।

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन भी काव्य की आत्मा—ध्वनि के तीन भेदों वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि में रसध्वनि को ही सर्वोत्कृष्ट बताते हैं। उनका स्पष्ट उद्घोष है—



'महाकवि का यह मुख्य व्यापार है कि वह रस, भाव को ही काव्य का

मुख्य अर्थ मानकर उन्हीं शब्दों तथा अर्थों की रचना करे जो उसकी अभि-व्यक्ति के अनुकूल हो।[1]

ध्वन्यालोक की टीका में लोचनकार का स्पष्ट मत है कि ध्वनि को काव्य की आत्मा कहना तो सामान्य कथन है। 'वस्तुतः रस ही काव्य की आत्मा है।[2]

ध्वनिकार आनन्दवर्धन भरत के रस प्रधान काव्य सिद्धान्त से पूर्ण सहमत हैं। इसलिये 'ध्वन्यालोक' में भरत का नामोल्लेख करते हुए उनसे अपनी सहमति जताते हैं। वे कहते हैं कि—

रस तात्पर्य से काव्य निबन्धन की यह प्रथा भरत आदि में पायी जातो है। रस काव्य और नाट्य दोनों का जीवनभूत है।[3]

इस प्रकार आनन्दवर्धन काव्य के दोनों भेदों—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य में रस की प्रधानता बताते हैं। श्रव्यकाव्य का आनन्द श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा उठाया जाता है। इसके अन्तर्गत महाकाव्य तथा खण्ड काव्य आदि आते हैं। दृश्यकाव्य काव्य का एक ऐसा रूप है, जो कर्णेन्द्रिय तथा चक्षुरिन्द्रिय—दोनों के माध्यम से मानव मन को विमुग्ध करने वाला है। दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपकों की गणना की जाती है। दृश्यकाव्य को रूपक इसलिये कहते हैं कि उस (रूपक) में नटादि (अभिनेता) में रामादिक (नाटक के पात्रों) का स्वरूप आरोपित किया जाता है। नट राम, सीता, दुष्यन्त आदि का रूप धारण करता है और सामाजिकों को उसमें 'अयं रामः', इत्यादि की प्रतीति

---

१. अयमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यत् रसादीनेव मुख्यतया काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानामर्थानाञ्चोपनिबन्धनम्। ध्वन्यालोक पृ० १८१-८२

२. तेन रस एव वस्तुतः आत्मा। लोचन पृ० २७

३. एतच्च रसादितात्पर्येण काव्यनिबन्धनं भरतादावपि सुप्रसिद्धमेवेति। रसादयो हि द्वयोरपि तयो (काव्यनाट्ययो) र्जीवित भूताः।

ध्वन्यालोक पृ० १८२

होती है। अतः रूप का आरोप होने के कारण ही दृश्यकाव्य को रूपक कहते हैं—

तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।[1]

**रूपक के दस प्रकार होते हैं**[2]—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, वीथी, अंक और प्रहसन। इनके अतिरिक्त नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक एवम् प्रस्थान आदि अठारह उपरूपक भी होते हैं। इन रूपकों तथा उपरूपकों में नाटक की प्रधानता मान्य है। अतः अधिकांश कवियों ने नाटकों की ही रचना की है। प्रकरण एवं भाण आदि की संख्या कम ही है।

आचार्य विश्वनाथ नाटक के लक्षण[1] में कहते हैं—

नाटक की कथावस्तु ख्यात अर्थात् रामायणादि इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिए। वह मुख, प्रतिमुख आदि पाँच सन्धियों से युक्त होवे। इसमें विलास समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना

---

१. साहित्यदर्पण ६ · १

२. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥ साहित्यदर्पण ६.

१. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्ध्र्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पञ्चाधिकाः दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥
प्रख्यावंशो राजर्षिः धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्॥ साहित्यदर्पण ६।७-११

चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखायी जाय और अनेक रसों से उसे पूर्ण होना चाहिए। इसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होते हैं। पुराणादि के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। शृंगार या वीर इनमें से कोई एक रस यहाँ प्रधान रहता है—अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं। इसे निर्वहण सन्धि में अत्यन्त अद्भुत बनाना चाहिए इसमें चार या पाँच पुरुष प्रधान कार्य के साधन में व्यापृत रहने चाहिए और गौ की पूँछ के अग्रभाग के समान इसकी रचना होनी चाहिए।

नाटक के सन्दर्भ में पाश्चात्य जगत् में भी काफी विचार हुआ है। यूनानी काव्यशास्त्र में अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त अत्यन्त ही प्रख्यात है, किन्तु नाटक के प्रसंग में 'अनुकरण' का व्यवहार अरस्तू का मौलिक प्रयोग नहीं है। अरस्तू से पहले ही ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने इसी अनुकरण के आधार पर काव्य को हेय कहा था। अनुकरण का अनुकरण होने के कारण काव्य को सत्य से दूर मानकर उन्होंने इसकी उपेक्षा की थी। उनका मत था कि एक तो भौतिक जगत स्वयं सत्य का अनुकरण है, फिर काव्य या नाटक तो उस भौतिक जगत् का भी अनुकरण है। अतः अनुकरण का भी अनुकरण होने से काव्य तिरस्करणीय है। उनकी धारणा का अर्थ है कि कलाकार अपने-अपने कौशल के द्वारा भौतिक जीवन और जगत् का अनुकरण करते हैं। अभिनेता अपने अभिनय में रामादि का अनुकरण वेश, भूषा, वाणी और आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से करता है तो एक चित्रकार आकार तथा रंग एवं रूप के द्वारा भौतिक पदार्थों की अनुकृति प्रस्तुत करता है।

विभिन्न रूपों में दृष्टिगत हो रहे अनुकरण को अरस्तू ने अपने सिद्धान्त-विवेचन के सन्दर्भ में अपना कर उसे एक विस्तृत आयाम दिया। उनके द्वारा प्रयुक्त 'अनुकरण' शब्द का विश्लेषण विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। एटकिन्स के अनुसार सृजनात्मक दर्शन की क्रिया अथवा पुनः सृजन का नाम ही अनुकरण है। बुचर ने अनुकरण का अर्थ किया है—

सादृश्य विधान या मूल का पुनरुत्पादन, सांकेतिक उल्लेख नहीं। उन्होंने अनुकरण को जीवन के कल्पनात्मक पुर्ननिर्माण का पर्याय बताया है। उनके मतानुसार अनुकरण से तात्पर्य है नाटक में जीवन का वस्तुपरक अंकन। वाट्स के अनुसार अपने पूर्ण अर्थ में अनुकरण से तात्पर्य है ऐसे प्रभाव का उत्पादन जो किसी अनुभूति, स्थिति अथवा व्यक्ति के शुद्ध प्रकृति रूप से उत्पन्न होता है। उनके मत में अनुकरण का अर्थ है आत्माभिव्यञ्जन से भिन्न जीवन की अनुभूति का पुनः सृजन।

इस प्रकार अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त के सन्दर्भ में विद्वानों के विभिन्न मतों की पृथक्ता अपना अलग-अलग महत्त्व रखती है, किन्तु प्रकृति के सन्दर्भ में इनके मत कुछ सीमित प्रतीत होते हैं। अरस्तू की प्रकृति वस्तुतः जीवन के समग्र रूप, यानि, अन्तः एवं बाह्य दोनों रूपों की समष्टि को ही अभिव्यक्त करती है। अतः उनका अनुकार्य इन तीनों प्रकार की वस्तुओं में से ही कोई एक हो सकती है – जैसी वे थी या हैं, जैसी वे कही या समझी जा सकती हैं अथवा जैसी उन्हें होनी चाहिए। इनमें प्रथम प्रकृति अथवा जीवन के बहिरंग पक्ष का द्योतक है तथा अन्य दोनों अन्तरंग का व्यंजक है।

कला के सन्दर्भ में परवर्ती आलोचकों ने काफी विस्तार से विचार किया है। उनमें क्रोचे का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। उनके अनुसार कला एक मानसिक क्रिया है। इसलिए वे इसे सहजानुभूति या सहज ज्ञान के रूप में अंगीकार करते हैं। क्रोचे ने कला को मानव की एक सहज मानसिक क्रिया के रूप में स्वीकार करके उसकी अखण्डता और शाश्वत सत्ता को प्रमाणित किया है। उनके विचार में कला मूलतः सहजानुभूति है जो अभिव्यक्ति रूप है। कला का मूल रूप कलाकार के मानस में घटित होता है। रंग, रेखा, शब्द, लय आदि में उनका अनुकरण सर्वथा आनुवंशिक घटना है। वे अभिव्यंजना को ही कला कहते हैं। इस प्रकार अरस्तू का अनुकरण क्रोचे के सिद्धान्त के अनुसार कला सृजन के प्रसंग में केवल आनुषंगिक प्रक्रिया मात्र रह जाता है।

प्रकृति के सम्बन्ध में भी क्रोचे का मत कुछ अलग है। उनकी धारणा है कि प्रकृति उन्हीं लोगों के लिए सुन्दर है जो कलाकार या कवि की दृष्टि से देखते हैं। कल्पना की दृष्टि के बिना प्रकृति का कोई अंग सुन्दर नहीं है। क्रोचे बाह्य पदार्थों को कल्पना में बिम्ब उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के रूप में स्वीकार करते हैं।

अरस्तू के काव्य सम्बन्धी मूल सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में जब हम भारतीय काव्यशास्त्र पर दृष्टि-निक्षेप करते हैं तो हमारी निभ्रान्ति धारणा बनती है कि भारतीय काव्यशास्त्र में आरम्भिक काल से ही काव्य के सन्दर्भ में अनुकरण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। काव्यशास्त्र के आदिम आचार्य भरत मुनि ने नाट्य को लोक स्वभाव का अनुकरण या लोकवृत्त का अनुकरण कहा है—

लोकस्व भावानुकरणाच्च नाट्यस्य त्तत्दमीप्सितम्।

× × ×

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥[1]

यहाँ स्वभाव तथा वृत्त शब्दों में लोक जीवन के समस्त अन्तर्बाह्य रूपों— वेश-भूषा, कार्यव्यापार, वाणी-व्यवहार आदि सभी भावों का समावेश है। यहाँ रंगमंच पर इनके अनुकरण का विधान विस्तार से किया गया है फिर भी अनुकरण से तात्पर्य अभिनय ही है। आचार्य भरत के अनुयायी धनञ्जय अपने ग्रंथ दशरूपक में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्[2]

अर्थात् अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है। नाट्य के बारे में धनञ्जय की धारणा है कि काव्यों में वर्णित नायकों (धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरशान्त) के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक—इन चारों माध्यमों से अभिनय के द्वारा रामादि की अवस्था का अनुकरण किया जाता है।

---

१. नाट्यशास्त्र—१-१११



२. दशरूपक—१, ७

अंग-संचालन, वेश-भूषा, आलाप-संलाप आदि के द्वारा नट रामादि का अनुकरण इस प्रकार करता है कि उस नट में रामादि से अभेद प्रतीत होने लगता है। नट में ही 'अयं रामः' की प्रतीति होने लगती है। अतः उन दोनों में एकत्व या तादात्म्य का आरोप हो जाने के कारण उसे रूपक कहते हैं—

**रूपकं तत्समारोपात्[१]।**

यहाँ नट में राम आदि का आरोप होने से इसे रूपक कहते हैं। रूपक अलंकार में भी नयन में कमल का आरोप करने के कारण कमलनयन शब्द का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में अनुकरण अपरिहार्य है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि नाट्य में जो अनुकरण होता है वह नटगत होता है, कविगत नहीं। अर्थात् अनुकरण का आश्रय नट होता है वह (अनुकरण) कवि कर्म नहीं होता है। अनुकरण का विषय अनुकार्य है जो राम आदि होते हैं।

भरत के रससूत्र के व्याख्याता भट्टलोल्लट इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ललना (आलम्बन विभाव), उद्यान (उद्दीपन विभाव) आदि से रति आदि (स्थायी) भाव उत्पन्न हुआ, (रति आदि की उत्पत्ति के) कार्य भूत कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभावों से प्रतीति के योग्य किया गया और सहकारी रूप निर्वेद आदि व्यभिचारी भावों से पुष्ट किया गया मुख्य रूप से अनुकार्य रूप राम आदि में और उनके स्वरूप का अनुभव करने से नट में प्रतीयमान स्थायिभाव ही रस कहा जाता है[२]।

---

१. दशरूपक—१, ७

२. विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्ष-भुजाक्षेप-प्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः, व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तके अपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।

काव्यप्रकाश पृ० १०१

अभिनवगुप्त ने भी अभिनव भारती में अनुकार शब्द का प्रयोग नटकर्म के लिये ही किया है—

"नहि नटो रामसादृश्यं स्वात्मनः शोकं करोति, सर्वथैव तत्र तस्या भावात् भावेनानुकारत्वात्[1] ।"

यहाँ रामादि के लिये अनुकार्य, अभिनेता के लिये अनुकर्ता और अभिनय के लिये अनुकरण शब्द का प्रयोग हुआ है। विश्वनाथ ने इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि रामादि अनुकार्य की रति आदि का उद्बोधक रस नहीं हो सकता—

'अनुकार्यस्य रत्यादेरुद्बोधो न रसो भवेत्[2]' ।

इससे स्पष्ट है कि रंगमंच के व्यापार को ही अनुकरण कहा गया है, कविकर्म को नहीं। काव्य को दिव्य प्रतिभाजन्य अलौकिक सिद्धि माना गया है, कला नहीं। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने कवि को स्वयं प्रजापति और काव्यसंसार को उसकी सृष्टि कहा है[3]। आचार्य मम्मट तो ब्रह्मा की सृष्टि से भी कविकृति को श्रेष्ठर मानते हैं क्योंकि ब्रह्मा की रचना नियति के नियमों (धर्माधर्मादि) के अधीन है, किन्तु कवि की कृति सभी नियमों से परे है। ब्रह्मा की रचना सुखदुःखों का सम्मिश्रण है तो कविसृष्टि विशुद्ध आनन्दमयी है। ब्रह्मा की रचना के लिये विविध अणु-परमाणुओं की अपेक्षा होती है, किन्तु कवि की रचना को किसी ऐसे तत्त्वों की आवश्यकता नहीं होती। वह किसी के अधीन न होकर अनन्य परतन्त्र है। ब्रह्मा के लोक में मधुर, आम्ल आदि छः रस होते है तो कवि संसार शृंगारादि नव रसों से परिपूर्ण होने से सदा रुचिकर ही होता है[4]। यही कारण है कि काव्य-विद्या

---

१. अभिनव भारती पृ० ३७

२. साहित्यदर्पण ३-८८

३. 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।' ध्वन्यालोक पृ० ४२२ ।

४. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।। काव्यप्रकाश १-१

सभी विद्याओं से श्रेष्ठ है। इसलिये अभिनयकर्ता की अपेक्षा कवियों को श्रेष्ठतर कहा गया है तथा अभिनय से काव्य को उच्चतर बताया गया है। इस तथ्य को भोजराज भी स्वीकार करते हैं[1]।

काव्य की इसी उत्कृष्टता के कारण 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग काव्य के लिये नहीं होकर अभिनय, नृत्त एवं चित्र आदि के लिये हुआ है[2]।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय काव्य शास्त्र में कवि का कर्तृत्व ही बहुमान्य है, अनुकर्तृत्व नहीं। अतः कवि-प्रतिभा कारयित्री है, अनुकारयित्री नहीं। काव्य कारण है, अनुकरण नहीं।

इस तरह अरस्तू और भरत या अन्य आचार्यों के काव्य सम्बन्धी मत भिन्न प्रतीत होते हुए भी तत्त्वतः भिन्न नहीं हैं। दोनों मार्ग अलग अलग हैं। फिर भी लक्ष्य समान है। दोनों ही आचार्यों ने नाटक को मानव या मानवेतर प्रकृति के अनुकरण के द्वारा आनन्द की उत्पत्ति या रसास्वादन का साधन बताया है। वे केवल बाह्य प्रकृति का ही अनुकरण नहीं करते। वरन् मानव की अन्तःप्रवृत्ति को भी अनुकरणगत करते हैं। एक प्रौढ़ नाटककार अपने पात्र की मनोदशा का भी वर्णन बिल्कुल उसी तरह करता है जैसे उसके बाहरी रूप का। नाटककार की कुशलता इसी बात पर निर्भर करती है कि उस (नाटककार) ने पात्रों की आभ्यन्तर प्रकृति को कितने सुन्दर तथा मार्मिक रूप में अभिव्यंजित किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस-सिद्धान्त की महत्ता इसी दिशा में संकेत करती है। रस के बिना भारतीय काव्यशास्त्र में नाटक की धारणा ही नहीं होती। सम्भवतः इसी लिये काव्यों में नाटक को अधिक रमणीय कहा गया है—

**काव्येषु नाटकं रम्यम्।**

---

१. अतः अभिनेतृभ्यः कवीनेव बहुमन्यामहे, अभिनयेभ्यः काव्यमेवेति।

श्रृंगारप्रकाश

२. यथा नृत्ते तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता।

चित्रसूत्र

रीतिवादी आचार्य वामन प्रबन्धकाव्यों में दस रूपकों को श्रेष्ठ बताते हैं[१]। उनकी मान्यता है कि दस प्रकार के रूपक चित्रपट के समान चित्ररूप की सभी विशेषताओं से युक्त होने के कारण विस्मयकारी एवम् आनन्ददायी हैं[२]। वामन इन दस रूपकों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने में इतना रम जाते हैं कि इन रूपकों से ही वे कथा, आख्यायिका एवं महाकाव्य आदि भेदों की कल्पना का उद्घोष करते हैं[३]।

काव्यशास्त्र में ऐतिहासिक दृष्टि से काव्य और नाटक के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में तीन प्रकार के सिद्धान्त पाये जाते हैं। एक सिद्धान्त है कि काव्यों में नाटक की ही प्रधानता समझी जाती थी। इसलिये आचार्य भरत ने अपने ग्रन्थ की रचना 'नाट्यशास्त्र' के रूप में की थी। रीतिवादी आचार्य वामन भी इसी सिद्धान्त से सहमति व्यक्त करते हुए प्रबन्धकाव्यों में दस रूपकों को श्रेष्ठ मानते हैं। उन रूपकों के विवेचन के लिए ही धनञ्जय ने 'दशरूपक' ग्रन्थ की रचना की। नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार अभिनवगुप्त काव्य को दश रूपकों का स्वरूप मानते हैं—

**काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपात्मकमेव।**

दूसरे मत के अनुसार महाकाव्य आदि का स्वतंत्र अस्तित्त्व है जो नाटकादि से भिन्न है। काव्य के स्वतंत्र रूप से दो भेद हैं—श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि आते हैं तो दृश्य काव्य के अन्तर्गत रूपकों की गणना एवं विवेचना की गयी है।

तीसरा मत काव्यों में ही नाटक आदि का अन्तर्भाव मानता है। इस मत के अनुसार काव्य का निरूपण करनेवाले ग्रन्थों में एक भाग विशेष के

---

१. 'सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः।' काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १, २, ३०।
२. 'तद्धि चित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात्।' काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः १, ३, ३१।
३. ततोऽन्य भेदक्लृप्तिः। ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्यैव हीदं सर्वं विलसितम् यच्च कथाख्यायिकं महाकाव्यमिति। काव्यालंकारसूत्रवृत्ति पृ० २१

रूप में रूपकों का विवेचन किया जाता है। जैसे 'साहित्यदर्पण' ग्रन्थ के दस परिच्छेदों में एक परिच्छेद (छठा) में रूपकों का विश्लेषण किया गया है। भोजराज जैसे विद्वान् दश रूपकों की अपेक्षा काव्य को ही बहुमान देते हैं।

गौतम बुद्ध के 'मज्झिम निकाय' में अधिक आस्था रखनेवाले मेरे जैसे लोग मध्यममार्गी होने से यहाँ भी दूसरे मत को ही अधिक संगत मानते हैं क्योंकि आरम्भिक काल से ही महाकाव्य और नाटक अलग-अलग लिखे गये। महाकाव्यों में पठन-श्रवण के द्वारा रसचर्वणा होती है जबकि नाटक अभिनय के द्वारा सामाजिकों में रसानुभूति कराते हैं। यह बात दूसरी है कि महाकाव्य के प्रणेता भी कवि कहलाते हैं और नाट्यकार भी कवि की पदवी से अभिहित किये जाते हैं। कालिदास एवं अश्वघोष आदि ने महाकाव्य एवं नाटक दोनों की रचना की और उन्हें महती ख्याति प्राप्त हुई। आज भी दोनों विधाओं का प्रणयन स्वतन्त्र रूप से हो रहा है।

## नाटक की उत्पत्ति और विकास

नाटक की सफलता के लिये अन्य तत्त्वों में उसकी अभिनेयता प्रमुख है और यह अभिनेयता अनुकरण पर ही आधारित होती है। रामादि की तत्तत् अवस्थाओं को अनुकरण के द्वारा नट सामाजिकों का मनोरंजन करता है। अनुकरण की भावना मानव में स्वाभाविक रूप से देखी जाती है। मानव ही नहीं, बन्दर-भालू जैसे पशुओं में भी यह प्रवृत्ति सहज रूप से पायी जाती है। सर्कस का खेल इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वहाँ हम वानर को रेल का इंजन चलाते और भालू को रिक्सा चलाते देखकर आनन्द का अनुभव करते हैं क्योंकि वे बन्दर और भालू मानव द्वारा किये जाने वाले कार्यों का अनुकरण सहजभाव से करते हुए हमें आह्लादित करते हैं। यह बात अलग है कि लोक में अनुकरण से प्राप्त आनन्द विशुद्ध मनोरंजन के लिये होता है जबकि नाट्य या काव्य का लक्ष्य केवल मनोरंजन नहीं होता। वह तो, हमें 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्' का उपयोगी उपदेश भी देता है।

जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त ने भी काव्य के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

**केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये।**
**उसे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये॥**

महामना तुलसीदास जी उसी कविता को श्रेष्ठ मानते हैं जिससे सबों का हित साधन होता है—

**कीरति भनिति भूति भलि सोई।**
**सुरसरि सम सब कहँ हित होई[1]॥**

नाट्य या काव्य के लक्ष्य के बारे में विचार करने पर ज्ञात होता है कि पाश्चात्य धारणा काव्य में आनन्द को एकमात्र लक्ष्य मानती है। इतना नहीं तो, कम-से-कम प्रधान लक्ष्य जरूर ही मानती है। उपदेश को ग्रहण करने पर भी उसे द्वितीय स्थान ही प्राप्त है। जैसा कि होरेस ने कहा है—

Delight is chief, if not the only end of poetry, instruction can be admitted, but in the second place.

अस्तु, प्रकृत में हमारा विवेच्य विषय नाटक की उत्पत्ति एवं विकास है। अतः उसके बारे में ही हम यहाँ विचार करेंगे।

भारतीय मनीषा हर किसी विषय या वस्तु के विकास का बीज वेदों में अन्वेषण करने में रुचि रखती है। नाटक की उत्पत्ति पर विश्लेषण के सन्दर्भ में भी यह स्थिति देखी जाती है। भारतीय संस्कृति के विकास में धर्म का मूलभूत स्थान है। मनु भी कहते हैं—

**'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्[2]।'**

भारतीय मान्यता के अनुसार चार युगों में कृतयुग या सत्ययुग प्रथम है। जिसमें धर्म के चारों चरण स्थित थे। अतः उस समय लोगों को किसी

---

१. रामचरितमानस १ १४.९

२. मनुस्मृति २.६

प्रकार के मनोरंजन की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु त्रेता युग के आने पर धर्म का एक चरण लुप्त हो गया। अतः धर्म में लोगों की रुचि का ह्रास होने के कारण मनोरंजन के लिये साधन की आवश्यकता समझी जाने लगी। दूसरी ओर समाज के एक वर्ग-शूद्रों के लिये निःश्रेयस् का कोई मार्ग नहीं था क्योंकि वेदाध्ययन उनके लिये निषिद्ध था। अतः उनके मनस्तोष के लिये भी कुछ सामग्री अपेक्षित थी।

नाट्यशास्त्र में कथा आती है कि महेन्द्र आदि प्रमुख देवतागण ब्रह्मा के पास गये और उनसे निवेदन किया कि हमलोग मनोरंजन का कुछ ऐसा साधन चाहते हैं जो दृश्य एवं श्रव्य—दोनों हो। शूद्रों के लिये वेदों का अध्ययन निषिद्ध होने के कारण चारो वेदों से भिन्न तथा सभी वर्णों के लिये हितकारी एवं ज्ञानवर्धक और आह्लादजनक पंचम वेद—नाट्यवेद की रचना करें। देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार कर ब्रह्मा ने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से क्रमशः पाठ्य या कथावस्तु, गीत, अभिनय और रस को लेकर नाट्यवेद का प्रणयन किया[1] एवं देवताओं के द्वारा इस (नाट्यवेद) के प्रयोग का आदेश इन्द्र को दिया, किन्तु इसके प्रयोग में देवताओं की अक्षमता जानकर इन्द्र ने ऋषियों के द्वारा इसका प्रयोग कराने का निवेदन ब्रह्मा से किया। अतः ब्रह्माजी के आदेश पर भरत मुनि ने अपने सौ पुत्रों को नाट्यवेद पढ़ाया और उन्हें उसका प्रयोग भी सिखाया।[2] उन्होंने शिव तथा पार्वती से क्रमशः ताण्डव एवं लास्य लिया और शिव से ही रीति ली। ब्रह्माजी के कहने पर इन्द्रध्वज पर्व के अवसर पर नाटक का अभिनय किया गया। यह महोत्सव कर्मकाण्ड तक सीमित न होकर जन सामान्य के लिये था।

---

१. संकल्प्य भगवानेवं सर्वान्वेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्ग सम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥ नाट्यशास्त्र १·१६, १७

२. आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्।
पुत्रानध्यापयामास प्रयोगंचापि तत्त्वतः॥ नाट्यशास्त्र १·३५

इस प्रकार भारतीय परम्परा नाटकों की दैवी उत्पत्ति--सिद्धान्त स्वीकार करती है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में इस वर्णन से यह तथ्य सामने आता है कि भरत के 'नाट्यशास्त्र' की रचना के पूर्व भारतीय नाटक तथा रंगमंच पूर्णतः विकसित हो चुके थे।

ऋग्वेद में अनेक ऐसे सूत्र हैं जिनमें संवाद का तत्त्व पाया जाता है। इनमें इन्द्र-मरुत्-संवाद (१/१६५, १/१७०), विश्वामित्र-नदी-संवाद (३/३३), पुरुरवस्-उर्वशी-संवाद (१०/९५) तथा यम-यमी-संवाद (१०/१०) मुख्य हैं। इन सम्वादसूक्तों को ध्यान में रखते हुए मेक्समूलर ने मत व्यक्त किया था कि इन सूक्तों का पाठ यज्ञ के समय इस ढंग से किया जाता होगा कि अलग-अलग ऋत्विक् अलग-अलग पात्र (मरुत् या इन्द्र) वाले मन्त्रों का शंसन करते होंगे। वहाँ पाठ करने के उस ढंग में अभिनयात्मकता रहती होगी। प्रो० सिलवा लेवी भी इस मत के समर्थक हैं। उनके अनुसार ऋग्वेद काल में अभिनय की स्थिति थी। वे मानते हैं कि उस काल में देवताओं के रूप में, यज्ञादि के समय, नाटकाभिनय अवश्य होता होगा। नाटक के मुख्यतः तीन उपकरण होते हैं—नृत्य, गीत और संवाद।

ऋग्वेद में विवाह सूक्त के अन्तर्गत नवदम्पती के सामने शृंगार की हुई कुमारियों के नृत्य का उल्लेख मिलता है। सामवेद से ज्ञात होता है कि गानविद्या भी उस समय तक पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी। यज्ञ के अवसर पर सामवेद के सूक्तों का गायन होता था। अथर्ववेद में वादन के साथ गायन तथा नृत्य का उल्लेख मिलता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक युग में नाटक ही के समान कुछ दृश्य दिखाये जाते थे जो अवश्य ही धार्मिक रूप में रहे होंगे। उनसे ही नाटकों का विकास हुआ ऐसा मानने में कोई असंगति नहीं है।

नाटक की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मत अलग-अलग रूप में व्यक्त किये हैं। उनमें डा० रिजवे का मृतक पूजावाद, कीथ का मेपोलवाद, स्टेनकोनो का लोकप्रिय स्वांगवाद, डा० पिशेल का पुत्तलिका नृत्यवाद तथा छायानाटकवाद बहुचर्चित है, किन्तु तर्कपूर्ण विचार करने पर

ये मत उन पाश्चात्य विद्वानों को भी बहुत संगत नहीं जँचते जिससे ये मत विश्वसनीय नहीं हैं। अतः विस्तार से इनका उल्लेख अनपेक्षित है।

पौराणिक काल की कृतियों में 'नटनर्तकाः' आदि शब्द मिलते हैं जिनसे उस काल में नाटक की स्थिति का पता चलता है। रामायण एवं महाभारत में भी नाटकों का संकेत मिलता है। रामायण में 'नाटक' एवं 'नट' शब्द पाये जाते हैं। अयोध्याकाण्ड में 'नाटक' तथा 'वेश्याओं' से युक्त अयोध्या नगरी का वर्णन है।[१] राम के राज्याभिषेक के समय में नटों, नर्तकों तथा गायकों के उपस्थित होने तथा अपनी कला-कुशलता से लोगों को आनन्दित करने का उल्लेख मिलता है।[२]

महाभारत में भी नट-शैलूष आदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। हरिवंश पर्व के ९१ से ९७ अध्याय तक नाटक खेले जाने के संकेत मिलते हैं। वहाँ एक वर्णन के अनुसार बज्रनाभ नामक दैत्य को मारने के लिये श्रीकृष्ण तथा उनके सखाओं ने कपट-नटों का वेष धारण कर उसकी नगरी में जाकर रामायण का नाटक खेला था। इसके बाद उन्होंने कौवेरम्भाभिसार नाटक भी खेला। नाटक के अभिनय से मुग्ध उन दैत्यों तथा उनकी स्त्रियों ने अपने सुवर्ण के आभूषण खोलकर नटों को दे दिये। नाटक के वशीकरण से प्रद्युम्न ने अमित बज्रनाभ का वध कर उसकी बेटी प्रभावती के साथ विवाह रचाया था। इस प्रकार महाभारत काल में नाटक का सर्वाङ्गीण रूप उपलब्ध होता है। यह बात दूसरी है कि डा० ए० वी० कीथ हरिवंश तथा महाभारत (हरिवंशेतर महाभारत) के रचना-काल में बहुत बड़ा अन्तराल बताते हैं। वे हरिवंश को बाद का क्षेपक मानते हैं।

रामायण तथा महाभारत के बाद बौद्ध ग्रंथों तथा जैन-ग्रंथों एवं वात्स्यायन के कामसूत्रों में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। कामसूत्र में

---

१. वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।
उद्यानाम्रवनोपेतां महतीं सालमेखलाम्।। वाल्मीकि रामायण १-५-१२

२. नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।। वाल्मीकि रामायण

निर्देश है कि वाहर से आये हुए नट प्रथम दिन नागरिकों को नाटक दिखायें और उसका पारिश्रमिक दूसरे दिन ग्रहण करें। यदि लोग फिर देखना चाहें तो दूसरे दिन भी देखें, अन्यथा नट को सम्मानपूर्वक विदा करें। नगर के नटों तथा आगन्तुक नटों के बीच परस्पर सहयोग की भावना रहनी चाहिये।[1]

वात्स्यायन का काल ई० पू० दूसरी शती है। अतः इससे सिद्ध है कि ई० पू० दूसरी शती से पूर्व ही भारत में नाटकों का निर्विवाद तथा पूर्णतः अस्तित्व था।

इनके पूर्व ही पाणिनि का अष्टाध्यायी के सूत्रों में पराशर्य, शिलालि तथा कृशाश्व के नट सूत्रों का उल्लेख मिलता है।[2] पाणिनि का समय अनेक विद्वानों के अनुसार ई० पू पाँचवी शताब्दी है। महाभाष्यकार पतञ्जलि (१५० ई०) स्पष्ट रूप से 'कंसवध' तथा 'बलिबन्ध' इन दो कथाओं से सम्बद्ध नाटकों का उल्लेख करते हैं।[3] इसके बाद नाट्य-रचना की एक लम्बी शृंखला दीख पड़ती है।

इसलिये संस्कृत नाटकों में ग्रीक नाटकों से उत्पत्ति का बीज ढूंढना मात्र दुराग्रह तथा हठधर्मिता होगी। वैसे एक दूसरे के सम्पर्क में आने पर एक दूसरे के प्रभाव से अछूता रहना कठिन है, एक से दूसरे के प्रभावित होने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। फिर भी, कुछ लोग भारतीय नाटकों को यूनानी नाटकों की देन बताते हुए कहते हैं कि संस्कृत नाटकों में

---

१. कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणमेषां वै दधुः।
द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजानियतं ल भेरन्।
ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा।
व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परैककार्यता। कामसूत्र १।४।२८—३१

२. पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। अष्टाध्यायी ४।३।११०

३. इदंतु कथं वर्तमानकालता कंसं घातयति बलिं बन्धयतीति चिरहते कंसे चिरबद्धे च बलो।

पर्दे के लिये प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द 'यवन' से बना है जो यूनानी नाटकों में पर्दे के लिये प्रयुक्त है। अतः इस शब्द से भारतीय नाटकों के यूनानी नाटकों के ऋणी होने का संकेत मिलता है, परन्तु यह विचार कल्पना मात्र है क्योंकि यूनानी नाटक तो खुले मैदान में होते थे और वहाँ कोई पर्दा भी नहीं होता था। फिर पर्दा के लिये 'जवनिका' शब्द ही प्रायः प्रयुक्त होता है।

अतः भारत के नाटकों के 'पर्दा' को 'यवन शब्द से सम्बद्ध करना संग नहीं लगता है। इस मत के प्रतिष्ठापक विद्वान वेवर का खण्डन डा० की ने ही कर दिया है। भारत की प्रत्येक साहित्यिक, कलात्मक या शास्त्रीय समृद्धि में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा यूनान का प्रभाव या मूल प्रेरणा का अन्वेषण करना तथ्यहीन प्रतीत होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में नाटक के जो बीज बिखरे हुए पाये जाते हैं वे समय तथा परिस्थिति की मिट्टी, पानी एवं हवा के सहारे अंकुरित एवं परिवर्धित होते हुए भरत के काल (अनुमानतः ई. पू. दूसरी सदी) तक एक विशाल वृक्ष का रूप ले लेते हैं जिनकी हर डाली तथा पत्तियों एवं पुष्पों और फलों का विस्तृत विश्लेषण नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। आज संस्कृत साहित्य का नाट्य भाग इतना समृद्ध है कि मात्रा तथा गुण दोनों दृष्टियों से विश्व के नाट्य-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थ रखता है।

**संस्कृत रूपकों की विशेषतायें—**

१. संस्कृत रूपकों में रस की प्रधानता होती है। अलंकारशास्त्र के अनुसार इस (रूपक) में शृंगार, वीर अथवा शान्त रस में से कोई एक रस प्रधान होता है।

२. हास्य, रौद्र आदि अङ्ग रस के रूप में वर्णित होते हैं।

३. संस्कृत रूपकों में अन्वितित्रय (कालान्विति; स्थानान्विति एवं कार्यान्विति) का अनुपालन नहीं होता है।

४. इनमें उच्चवर्ग के पात्र (नायक आदि) संस्कृत में भाषण करते हैं किन्तु स्त्री तथा निम्नवर्गीय पात्र प्राकृत भाषा में बोलते हैं।

५. इनमें नायक के कार्य (नायिका से मिलन आदि) सम्पादन में सहायक विदूषक होता है। वह हास्य उत्पन्न करने में पटु होता है।

६. संस्कृत नाटक सुखान्त होते हैं।

७. इनमें धर्म तथा नैतिकता का प्राधान्य होता है।

**संस्कृत रूपकों का विकास—**

भारतीय वाङ्मय में रूपकों के बीज वैदिक साहित्य में उपलब्ध होने के साथ रामायण एवं महाभारत में उसकी स्थिति देखी जाती है। नाटकों के विकास की परम्परा का उल्लेख पाणिनि एवं पतञ्जलि के ग्रन्थों में प्राप्त होता है, किन्तु महाभाष्य में उल्लिखित 'कंसवध' एवं बलिबन्ध, की कथाओं से सम्बद्ध नाटक आज विद्यमान नहीं है। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित 'समुद्र-मन्थन' और 'त्रिपुरदाह' भी सम्भवतः काल के गाल में समा गये। काव्यशास्त्र के अन्य लक्षणग्रन्थों में भी उल्लिखित अनेक नाटक आज अन्वेषणीय ही हैं। संस्कृत के एक से एक नाटक आज भी प्रकाश में नहीं आ सके हैं। कुछ पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं और अधिसख्य रचना काल के गाल में समाहित हो गयी हैं।

सम्प्रति उपलब्ध नाट्य कृतियों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि संस्कृत काव्यजगत में प्रथम नाटककार होने का श्रेय महाकवि भास को ही जाता है क्योंकि कालिदास ने भी अपनी रचना मालविकाग्निमित्र में अन्य कवियों के साथ भास का उल्लेख किया है।[1]

भास की तेरह नाट्य रचनाओं में 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटक रामायण की कथा पर आश्रित हैं। 'मध्यमव्यायोग', 'दूतघटोत्कच', 'कर्ण

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धान् अतिक्रम्य कथं वर्त-मानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।

मालविकाग्निमित्र—४-१

भार' 'दूतवाक्य' और 'उरुभङ्ग' महाभारत पर आधारित हैं। 'बालचरित' का आधार भागवत पुराण है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' उदयन कथाश्रित हैं तथा 'दरिद्रचारुदत्त' और 'अविमारक' कल्पित रूपक हैं।

इस प्रकार काव्यरचना के लिये आधारभूत संस्कृत साहित्य की सभी उपजीव्य सामाग्रियों का उपयोग भास ने अपनी रचना के लिये किया है।

**कालिदास**—संस्कृत काव्यजगत् में प्रथम कोटि के काव्यकारों में कालिदास का नाम अग्रगण्य है। उनके तीन नाट्य ग्रन्थ हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तलम्। प्रथम दो रचनायें पाँच-पाँच अंकों में तथा तीसरी रचना सात अंकों में रचित है। ये तीनों नाटक श्रृंगार रस प्रधान हैं तथा इनमें नायक एवं नायिका के परस्पर प्रेम और विवाह का वर्णन है। इनमें संयोग और वियोग—दोनों पक्षों का वर्णन अत्यन्त रमणीय है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास की रचनाओं में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण नाट्य-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में मान्य है। यह उक्ति अत्यन्त प्रचलित है—

**'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।**

**शूद्रक**—संस्कृत वाङ्मय में शूद्रक का नाम अनेक स्थानों पर उल्लिखित है। नाट्य जगत् में ये 'मृच्छकटिकम्, के रचयिता के रूप में चर्चित हैं, किन्तु इस नाटक की प्रस्तावना में कवि परिचय में कहा गया है—

**'शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः[१]।'**

अर्थात् शूद्रक अग्नि में प्रवेश कर गये। इसलिये प्रश्न उठता है कि प्रस्तावना लिखने के पूर्व ही अग्नि में प्रवेश कर जाने वाले शूद्रक ने इस नाटक की रचना कैसे की ? क्या प्रस्तावना के ये पद्य शूद्रक के हैं ? यदि नहीं तो ये पद्य किसने और क्यों जोड़े ? इन प्रश्नों के उत्तर में विद्वान् आलोचक एकमत नहीं है। इस नाटक का कर्तृत्व आज भी निर्विवाद नहीं है।

---

१. मृच्छकटिक १/...

मृच्छकटिक संस्कृत जगत् का यथार्थवादी रूपक है जिसमें जीवन की कठोर वास्तविकता के दर्शन होते हैं। उस काल में मध्यम वर्ग की सामाजिक स्थिति को प्रतिविम्बित करने वाला यह अकेला नाटक है। इसके पात्र राजकुल के नहीं होकर चोर, जुआरी, वदमाश, षड्यन्त्री, भिक्षुक, राजसेवक, विट, गणिका और दासी हैं। रूपकलक्षणों के अनुसार मृच्छकटिक एक प्रकरण है। इसका नायक चारुदत्त जाति से ब्राह्मण होकर भी वृत्ति से वणिक् है। नायिका वसन्त सेना गणिका है। इस नाटक में दोनों के प्रेम तथा विवाह का वर्णन होने से इसका प्रधान रस शृंगार है।

**विशाखदत्त**—विशाखदत्त द्वारा निर्मित नाटक 'मुद्राराक्षस' अपने इतिवृत्त की दृष्टि से नाटकों में अद्वितीय राजनीतिक तथा कूटनीतिक विषय से सम्बद्ध नितान्त श्रेष्ठ नाटक है। इसका समय छठी सदी का उत्तरार्द्ध है। नन्द वंश के उन्मूलन और चन्द्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ करने के बाद चाणक्य नन्द वंश के स्वामी भक्त मन्त्री राक्षस को अपनी कूटनीतिक चालों से वश में करके चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री बनाना चाहते हैं और अपने बुद्धिबल से इन दोनों कार्यों में सफल हो जाते हैं। रक्त का बिना एक कतरा बहाये ही चाणक्य महान् युद्ध को जीत लेते हैं। अतः इस रचना का प्रधान रस वीर है।

**हर्षवर्धन**—भारतीय इतिहास में सुविख्यात सम्राट हर्षवर्धन (६०६-६४८) के द्वारा प्रणीत तीन रूपक मिलते हैं—रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। रत्नावली, चार अंकों की श्रेष्ठ नाटिका है। इसमें वत्सराज उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली की प्रेमकथा का वर्णन होने से इसका प्रधान रस शृंगार है। प्रेम-प्रपंच की सजीव घटनाओं और नाटकीय संवादों से यह रचना अत्यन्त सरस बन गयी है। 'प्रियदर्शिका' चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा दृढ़वर्मन की पुत्री प्रियदर्शिका और महाराज उदयन की प्रेम कथा वर्णित है। वर्ण्यविषय तथा स्वरूप की दृष्टि से 'रत्नावली' और

'प्रियदर्शिका' में काफी साम्य है। 'नागानन्द' पाँच अंकों का नाटक है।

इसके पूर्वार्द्ध में विद्याधर कुमार जीमूतवाहन और सिद्धकन्या मलयवती का प्रणय-प्रसंग वर्णित है तथा उत्तरार्द्ध में जीमूतवाहन द्वारा गरूड़ को सर्प-भक्षण से विरत करने की घटना वर्णित है। इसमें जीमूतवाहन अपने त्याग से मानव मात्र को अहिंसा की शिक्षा देता है।

**भवभूति**—संस्कृत जगत् में कालिदास के बाद भवभूति (७०० ई० के लगभग) श्रेष्ठ रूपककार हैं। इनके तीन रूपक प्रचलित हैं—मालतीमाधव, महावीरचरित ओर उत्तररामचरित। इनमें प्रथम रचना प्रकरण है तथा अन्य दोनों नाटक हैं। दस अकों में निर्मित मालतीमाधव मार्मिक प्रणय कथा को प्रस्तुत करता है। इसका नायक है—विदर्भराज के मन्त्री देवराज का पुत्र माधव और नायिका है—पद्मावती राज्य के मन्त्री भुरिवसु की पुत्री मालती। अनेक विघ्न वाधाओं तथा प्रपंच एवं वचाव के वाद इन दोनों प्रेमियों का विवाह सम्भव हो पाता है। अतः प्रेम और विवाह के वर्णन के कारण इसका प्रधान रस शृंगार है।

महावीरचरित में राम के जीवन की घटनायें—सीता के विवाह से लेकर उनके राज्यभिषेक तक सात अंकों में वर्णित है। सीता स्वयम्बर व सीता का विवाह राम से हो जाने पर क्रुद्ध रावण राम को नष्ट करने के लिये अनेक उपाय करता है, किन्तु विफल रहता है और अन्त मे राम उसका संहार कर सीता के साथ सकुशल अयोध्या लौटते है। युद्धवर्णन की प्रधानता के कारण इसका प्रधान रस वीर है।

उत्तररामचरित सात अंकों का नाटक है। उसमें राम के उत्तर जीवन की कथा वार्णित है। राज्याभिषेक के वाद दूत के मुख से सीता-विषयक प्रवाद को सुनकर सीता के निष्कासन तथा उसके कारण राम की सीता-विरह-जन्य दुस्सह वेदनाओं का वर्णन हैं। अन्त में गर्भांक की योजना के द्वारा सीता और राम का मिलन करा देने से यह नाटक सुखान्त हो गया है।

सीता के विरह के कारण राम के शोक का विस्तृत तथा अत्यन्त प्रभाव-

शाली वर्णन होने से इस नाटक का प्रधान रस करुण है। करुण के वर्णन में

कवि इतने रम जाते हैं कि 'एको, रसः करुण एव" का उद्घोष करते हुए अन्य (शृंगारादि) रसों को उस (करुण) का विवर्त्त कह बैठते हैं। यह नाटक भवभूति की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ होने के साथ समस्त संस्कृत नाट्य-जगत् में महनीय पद को प्राप्त करता है। इसलिये कहा गया है—

**'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'।**

**भट्टनारायण**—भट्टनारायण (अष्टम शती) की एकमात्र रचना 'वेणीसंहार छः अंकों में निबद्ध नाटक है जो महाभारत की कथावस्तु पर आधारित है। 'वेणीसंहार' में, जैसा कि इस ग्रन्थ के नामकरण से ही स्पष्ट है, भीम के द्वारा दुःशासन का वध कर उसके रक्त से द्रौपदी की खुली वेणी (जूंड़ा) के संहार (सँवारे जाने) की घटना वर्णित है। युद्ध प्रधान वर्णन होने से इस नाटक का प्रधान रस वीर है जिसकी पुष्टि करुण, रौद्र तथा भयानक रसों के वर्णन से की गयी है। पण्डितों ने वेणीसंहार को नाटककार के द्वारा नाटकीय सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर लिखा गया नाटक बताया है। नाटकीय प्रवाह इसमें विशृंखलित दीख पड़ता है।

**मुरारि**—मुरारि (नवम शती का आरम्भ) ने रामायण से कथावस्तु लेकर 'अनर्घराघव' नाटक की रचना सात अंकों में की है। इसमें तारका वध से लेकर रामराज्याभिषेक तक की घटनायें वर्णित हैं। इस नाटक के बारे में आलोचकों की राय है कि यह रचना एक अच्छा काव्य भले ही हो, नाटक के रूप में सफल नहीं है। इसकी रचना शैली अत्यन्त बोझिल है।

**शक्तिभद्र**—शक्तिभद्र ने रामायण की कथा के आधार पर 'आश्चर्य चूड़ामणि' नामक नाटक का प्रणयन किया है। इसमें शूपर्णखा प्रसंग से लेकर रावणवध तथा सीता के अग्नि-परीक्षण तक की कथा वर्णित है।

**दामोदरमिश्र**—दामोदर मिश्र (नवम शतक) का हनुमन्नाटक अथवा महानाटक संस्कृत का सबसे बड़ा नाटक है। इसमें गद्य का प्रयोग बहुत कम है तथा प्राकृत का अभाव है।

**राजशेखर**---राजशेखर कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल (८९३-९००) के गुरु थे। इनकी छः रचनाओं[१] में बालरामायण, बालभारत, कर्पूर मंजरी तथा विद्धशालभंजिका—ये चार रूपक हैं। बालरामायण रामकथा पर आधारित दस अंकों का नाटक है। इसमें रावण की दीनता और पौरुषहीनता को अधिक उभारा गया है। बालभारत के प्राप्त दो अंकों में पाण्डवों की कथा द्यूतक्रीड़ा तक वर्णित है। विद्धशालभंजिका के चार अंकों में राजा विद्याधर तथा लाट देश के नरेशचन्द्र वर्मा की पुत्री मृगाङ्कवती के गुप्त विवाह का वर्णन है। कर्पूरमंजरी प्राकृत भाषा में लिखित एक सट्टक है। इसमें राजकुमारी चन्द्रपाल तथा कुन्तल देश की राजकुमारी कर्पूर मंजरी की प्रणय कथा चित्रित है।

**जयदेव**—जयदेव (१२००) ने राम कथा के आधार पर 'प्रसन्नराघव' की रचना की। इसमें धनुषयज्ञ से लेकर राम के जंगल जाने तथा रावण वध के बाद उनके अयोध्या लौटने तक की घटना वर्णित है। उसमें कतिपय मार्मिक परिवर्तन भी किये गये हैं। प्रसन्नराघव के प्रणेता जयदेव गीत-गोविन्दकार जयदेव से भिन्न व्यक्ति हैं।

**रामचन्द्र दीक्षित**—रामचन्द्र दीक्षित (१७००) का जानकीहरण अत्यन्त रोचक रूपक है। इसमें कृत्रिम राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्र को वास्तविक राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्र के रूप में उपस्थित किया गया है। यह रूपक अपने ढंग का निराला है।

संस्कृत साहित्य में रूपक-निर्माण की परम्परा में नवमी शती के बाद ही ह्रास होने लगा था, फिर भी काव्य-**निर्मा**ण की धारा गतिपूर्ण रही। कुछ न कुछ रूपक लिखे जाते रहे। उनमें कुछ प्रतीक रूपक भी हैं, जिनमें अमूर्त गुणों अथवा भावों को पात्रों के रूप में मंच पर प्रतीक रूप में उपस्थित किया गया है। इस प्रकार के रूपकों में कृष्ण मिश्र (ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध)

---

१. 'विद्धि नः पद प्रबन्धान्

का प्रबोधचन्द्रोदय है। इसके छः अंकों में मोह, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और अहंकार का संघर्ष विवेक, सन्तोष, शान्ति, करुणा, मैत्री, भक्ति, क्षमा आदि के साथ दिखाया गया है। इसका प्रमुख रस शान्त है।

इस नाटक के अनुकरण पर अनेक रचनायें हुई जिनमें गोकुलनाथ का 'अमृतोदय' एवं कविकर्णपूर के 'चैतन्यचन्द्रोदय' का उल्लेखनीय महत्त्व है।

संस्कृत में कुछ छायारूपक भी मिलते हैं, उनमें सुभट (तेरहवीं सदी) विरचित 'दूताङ्गद' तथा व्यास रामदेव (पन्द्रदवी शती) द्वारा रचित 'सुभद्रा परिणय' एवं 'रामाभ्युदय' आदि हैं।

इसके वाद भी रूपकों की रचना होती रही जिनकी संख्या अगणित है। उनमें वामनभट्ट बाण (चौदहवी सदी) का पार्वतीपरिणय कविशेखर का धूर्त समागम, रूप गोस्वामी (सोलहवीं सदी) के ललितमाधव तथा विदग्धमाधव आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी संस्कृत में रूपकों के निर्माण का क्रम जारी है। उस शृंखला की एक छोटी सी कड़ी है, प्रस्तुत रूपक—'अद्भुतपाणि-ग्रहणम्'।

इस रूपक की कथावस्तु कल्पित है तथा आधुनिक सामाजिक सन्दर्भ से सम्बद्ध हैं। आज की सामाजिक ओर वैचारिक स्थिति का चित्रण करना तथा समाज में व्याप्त कुण्ठा एवं रूढ़िवादिता को रूपायित कर उस पर प्रहार करना इस ग्रन्थ का विषय (लक्ष्य) है।

इस नाटक की कथावस्तु इस प्रकार है—

## प्रथम अङ्क

मङ्गलाचरण के बाद भूदत्त और सोमदत्त परीक्षा के लिए मानक पुस्तक और प्रश्नोत्तर पुस्तकों की उपयोगिता के सन्दर्भ में बातें करते हैं फिर समाज में धन के प्रभाव पर चर्चा होती है और युवजनों में प्रियभूत तमालपत्र की महिमा बतायी जाती है।

## द्वितीय अङ्क

उच्च कुल में उत्पन्न सोमदत्त और निम्न जातीया श्यामा पुस्तकालय में परीक्षा सम्बन्धी बातें करते हैं। श्यामा के अनुरोध पर सोमदत्त कविता सुनाता है। उस क्रम में श्यामा सोमदत्त में विशिष्ट गुणों को देखकर उसके प्रति अनुरक्त होने लगती है। सोमदत्त भी श्यामा को प्रणय-दृष्टि से निहारता है।

## तृतीय अङ्क

ब्राह्मण ब्रह्मदत्त की पुत्री सुनयना महाविद्यालय जाने के रास्ते में रिक्सा-चालक से महाविद्यालय जीवन के अनुभव को सुनकर आनन्द उठाती है। वह निम्नजातीय कान्तिराम के साथ बातचीत के सन्दर्भ में समाज में फैली जाति-व्यवस्था पर कड़ा प्रहार करती है। कान्तिराम उसकी तर्कशक्ति पर मुग्ध होकर उसके लिए 'कुछ करने' की अभिलाषा व्यक्त करता है। सुनयना भी उसके प्रति स्नेहिल हो जाती है।

## चतुर्थ अङ्क

भिक्षा-ग्रहण कार्य को सर्वोत्तम वृत्ति के रूप में प्रस्तुत करता हुआ एक भिक्षुक अत्यन्त भावपूर्ण मधुर गीत गाता है। अच्छे परिधान में उसे देखकर सोमदत्त उससे भिक्षा माँगने का कारण पूछता है। भिक्षुक का उत्तर है कि अच्छे परिधान में रहने पर भिक्षा भी बहुमूल्य मिलती है। पास में अधिक पैसे न होने के कारण सोमदत्त उस भिक्षुक को अपनी एकमात्र ऊनी चादर दे डालता है। सोमदत्त की उदारता देखकर श्यामा दंग रह जाती है। वह उसे अपने जन्म दिन पर आमन्त्रित करना चाहती है, किन्तु सोमदत्त की जाति उच्च और अपनी जाति निम्न होने के कारण संकोच व्यक्त करती है, परन्तु सोमदत्त धनसम्पन्नता एवं पद-गरिमा के सामने रूढ़िवादिता तथा जातिबन्धन की निरर्थकता एवं तथाकथित लोगों के सिद्धान्त एवं व्यवहार में परस्पर विरोध की स्थिति बताकर उस पर कड़ा प्रहार करते हुए उसके जन्म दिन पर आने की स्वीकृति देता है। सन्ध्यावर्णन से अंक समाप्त होता है।

## पञ्चम अङ्क

सुनयना और श्यामा अपनी-अपनी प्रेम कहानी का राज एक दूसरी को बताती हैं, किन्तु दोनों का प्रेम विजातीय व्यक्ति से है अतः उस प्रेम को विवाह में परिणत होने में वे आशंका व्यक्त करती हैं तथा समाज में फैली रूढ़ि धारणा तथा जाति भावना पर आक्रोश व्यक्त करने के साथ लोगों में फैली स्वार्थ-चिन्ता की प्रबलता और राष्ट्रिय भावना की विरलता की आलोचना करती हैं।

इसी समय कान्तिराम के आ जाने पर श्यामा उस (कान्तिराम) के प्रति सुनयना की अनुरक्ति का उद्घाटन करती है। कान्तिराम उसे पा लेने में अपना सौभाग्य समझता है। सभी एक ही साथ सुनयना के रुग्न पिता ब्रह्मदत्त को देखने जाते हैं।

## षष्ठ अङ्क

सुनयना के विवाह हेतु चिन्तित रहने के कारण ब्रह्मदत्त रोग से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। श्यामा और कान्तिराम उन्हें उस चिन्ता से मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ करने का आग्रह करते हैं क्योंकि सुनयना के विवाह हेतु वे लोग भी प्रयत्नशील हैं। ब्रह्मदत्त कान्तिराम के व्यक्तित्व एवं गुणों को देखकर उससे प्रभावित होते हैं। श्यामा ब्रह्मदत्त को सबों के साथ अपने (श्यामा के) जन्मदिन पर आने का निमन्त्रण देकर चली जाती है। ब्रह्मदत्त श्यामा को योग्य वर के हाथों सौंप कर चिन्ता मुक्त होने की कामना से परमेश्वर का स्मरण करते हैं।

× × ×

## सप्तम अङ्क

श्यामा के अठारहवें जन्मोत्सव पर सोमदत्त कान्तिराम के साथ पदार्पण करता है। श्यामा के जन्मदिन पर कोई बहुमूल्य उपहार न दे पाने के कारण संकोचवश फूलों का हार प्रदान करता है। श्यामा उसे वहाँ पाकर ही प्रफुल्लित हो इठलाती है। ब्रह्मदत्त और सुनयना का भी आगमन होता है।

श्यामा के पिता राजदत्त आगत अतिथियों का स्वागत करते हैं तथा सभामण्डली के चित्तानुरञ्जन हेतु सोमदत्त से एक मधुर गीत गाने का निवेदन करते हैं। सोमदत्त श्यामा के साथ ही गायन के लिए सहमत होता है। दोनों मिलकर श्रवण सुखद तथा हृदयाह्लादक गीत गाते हैं। सोमदत्त के मधुर संगीत से प्रमुदित राजदत्त उसे मनोवांछित वस्तुएँ माँगने का अनुग्रह करते हैं। वह (सोमदत्त) अपने लिए श्यामा का हाथ माँग लेता है। राजदत्त की स्वीकृति देखकर कान्तिराम सोमदत्त को बधाई देता है। कान्तिराम की अभिलाषा को जानकर श्यामा और सोमदत्त के निवेदन करने पर ब्रह्मदत्त उन दोनों (कान्तिराम और सुनयना) के विवाह की सहर्ष सहमति देते हैं तथा परमेश्वर की महिमा का ध्यान करते हैं।

इस भरत वाक्य से नाटक समाप्त होता है कि युवक और युवतियाँ अपने पिता की सहमति से योग्य एवम् अनुरूप कन्या तथा वर को प्राप्त करें।

इस प्रकार यह नाटक सामाजिक सन्दर्भ से जुड़ा होने एवं सामयिक समस्या को उजागर करने के कारण एक ओर परम्परा वादियों की धारणा को झकझोरने वाला है तो दूसरी ओर उदारवादी विचारों को बल प्रदान करने वाला है।

अस्तु, इस व्याख्या लेखन में हर मुश्किल को आसान बना देने वाले पूज्य पतिदेव के सतत सक्रिय सहयोग के प्रति मौन श्रद्धा व्यक्त करना ही समीचीन है क्योंकि आत्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा नहीं की जा सकती—

**आतम अनुभव ज्ञान की जित देखौ तित पीव।**
**गिरा अनयन नयन बिनु वानी।।**

फिर ऐसा प्रयास हठपूर्वक करें ही तो उसकी महनीयता बहुत सिमट जाती है।

बाल्यकाल से ही शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने एवं पुत्र और पुत्री के प्रति समान भाव रखने तथा आधुनिक विचारों के अलख जगाने में तत्पर

पिता श्री त्रिवेणी सिंह (ग्राम—पालीदीह, बेगूसराय) के प्रति नतमस्तक हूँ क्योंकि उनकी सत्प्रेरणा के विना आज कुछ लिख लेने की स्थिति में नहीं होती। अपनी अग्रजा उर्मिला एवं उनके पति श्री वाल्मीकि सिंह जी के प्रति मैं सदा कृतज्ञ हूँ जो मुझे अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करते रहे हैं।

अन्त में, काव्यप्रेमी सहृदयों तथा संस्कृतानुरागी छात्रों को प्रस्तुत व्याख्या से थोड़ा भी लाभ हुआ तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगी।

॥ इति शम् ॥

विनयावनता
ध्रुव कुमारी चौधरी

कार्तिक पूर्णिमा
संवत् २०५०

## श्लोकानुक्रमणिका छन्दो विवरणञ्च

| | अं० | श्लो० | छन्दः |
|---|---|---|---|
| अधीत्यापि | ४ | २ | भुजङ्गप्रायात |
| अनुरागयुता | ७ | २ | तोटक |
| आधिश्चव्याधि | ६ | १ | शालिनी |
| कलानिधिः | ५ | ६ | वंशस्थ |
| काले सहस्र | ४ | ४ | वसन्ततिलका |
| चन्द्रः कदा | ५ | ५ | उपजाति |
| दिवा भाति | २ | १ | भुजङ्गप्रयात |
| न वाञ्छा | ७ | १ | ,, |
| नित्यं समग्र | ५ | ४ | वसन्ततिलका |
| पीयूषपान | १ | १ | ,, |
| बिडौजा पुरा | १ | ४ | भुजङ्गप्रयात |
| मधुकरः परि | ३ | १ | द्रुतविलम्बित |
| मातुर्विहीन | ६ | २ | वसन्ततिलका |
| येषांवसूनि | ४ | १ | ,, |
| राष्ट्रस्य मङ्गल | ५ | २ | ,, |
| लौकिकवृता | १ | ३ | आर्या |
| विधात्राकृतं | २ | २ | भुजङ्गप्रयात |
| वैविध्यपूर्ण | ५ | ३ | वसन्ततिलका |
| शुभ्रांशुनाधि | ५ | १ | ,, |
| सिद्धान्तधोषं | ४ | ३ | उपजाति |
| सुरासुरा | १ | २ | ,, |

**गीतम्**

| | पृष्ठ |
|---|---|
| गच्छति नरो हि प्रीतिं जीवने यदा कदा | ६० |
| मानवदेहे उत्तमवृत्तिर्नित्यं भिक्षाग्रहणम् | २१ |

## पात्र परिचयः

**पुरुषाः**

**सोमदत्तः** : ब्राह्मणकुलोत्पन्नः मेधावी छात्रः

**कान्तिरामः** : धनसम्पन्नः निम्नजातीयः छात्रः

**भिक्षुकः** : बहुमूल्ये परिधाने भिक्षां याचमानः

**रिक्साचालकः** : महाविद्यालयस्य पूर्वश्छात्रः

**ब्रह्मदत्तः** : दीनब्राह्मणः

**राजदत्तः** : धनसम्पन्नोऽनुसूचितजातीयः

**स्त्रियौ :**

२. **श्यामा** : राजदत्तस्य पुत्री महाविद्यालयस्य छात्रा

**सुनयना** : ब्रह्मदत्तस्य पुत्री महाविद्यालयस्य छात्रा

॥ श्रीः ॥

डा० रामविलासचौधरिरचितम्

# ॥ अद्भुतपाणिग्रहणम् ॥

'कल्याणी'-संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतम्

—०—

## प्रथमोऽङ्कः

**पीयूषपानमपहाय विषं गृहीत्वा**
**मृत्युञ्जयेति पदवीं भुवि लब्धवान् यः ॥**
**सौधे निवासमवमत्य परेतभूमिम्**
**प्रीत्यावसन्तमधिदेवममुं प्रपद्ये ॥ १ ॥**

---

अथ कविः प्रारीप्सितग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्तये पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गभूतां नान्दीमादौ प्रस्तौति—पीयूषपानमित्यादि ।

**अन्वयः**—पीयूषपानमपहाय विषं गृहीत्वा यः मृत्युञ्जय इति पदवीं लब्धवान् अमुम् सौधे निवासमवमत्य परेतभूमिम् प्रीत्या आवसन्तम् अधिदेवम् (अहं) प्रपद्ये ।

**व्याख्या**—पीयूषपानम्-पीयूषस्य अमृतस्य पानम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः ('पीयूषममृतं सुधा' इत्यमरः) अपहाय विहाय विषं गरलम् ('क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्' इत्यमरः) गृहीत्वा आदाय यः शिवः भुवि लोके संसारे वा मृत्युञ्जय—मृत्युं जयतीति विग्रहे 'संज्ञायां भृतृवृजि' (३।२।४६) इति खच्, मुम् (६।३।६७) इति पदवीम् उपाधिं लब्धवान्-प्राप्तवान् अमुं तं सौधे प्रासादे निवासं वासम् अवमत्य तिरस्कृत्य परेतभूमिम् परेतानां मृतानां जनानां भूमिम् स्थानं श्मशानमित्यर्थः प्रीत्या हर्षेण ('मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः' इत्यमरः) आवसन्तम्

**सुरासुरा यच्छरणम् प्रपन्नाः**
**नित्यं समर्चन्ति विहाय वैरम् ।**
**तम्भूतनाथं हृदये निधाय**
**प्रस्तौमि नाट्यम्मनसः सुखाय ॥ २ ॥**

---

अधिवसन्तम् अधिदेवम् महादेवम् अहं नाटकप्रणेता प्रपद्ये आश्रये। अत्र देवाधिदेवस्य शङ्करस्यानुग्रहम् अभिलषन् कविः तस्य महादेवस्य महिमानं गायति।

अत्र वसन्ततिलकं वृत्तम्। तल्लक्षणमेवमुक्तम् 'ज्ञेयं वसन्ततिलकं त भजाजगौ गः'।

**सुरासुरा इति (अन्वयः)**—यच्छरणं प्रपन्नाः सुरासुराः वैरं विहाय नित्यं समर्चन्ति तम् भूतनाथं हृदये निधाय मनसः सुखाय नाट्यं प्रस्तौमि।

**व्याख्या**—यच्छरणं यस्य महादेवस्य शरणम् आश्रयं प्रपन्नाः प्राप्ताः सुरासुराः सुराः देवाः ('अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशाः विबुधाः सुरा' इत्यमरः) असुरा दानवाः ('असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः' इत्यमरः) नित्यम् प्रतिदिनं समर्चन्ति सम्यक् प्रकारेण पूजयन्ति तं तादृशं भूतनाथं भूतानां समेषां प्राणिनां स्वामिनम् शिवमित्यर्थः हृदये आत्मनि निधाय धारयित्वा मनसः चित्तस्य (चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः) सुखाय हर्षाय नाट्यम् अद्भुतपाणिग्रहणाभिधं नाटकम् प्रस्तौमि पाठकानां दर्शकानाञ्च समक्षम् उपस्थापयामि।

एतेन शिवम्प्रति कवेः भक्तिः ध्वन्यते। अत्र उपजातिवृत्तम्। उपेन्द्रेन्द्रवज्रयोः सम्मेलनात्। तल्लक्षणमेवम्—'अनन्तरोदीरितलक्ष्म भाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः'।

---

**अनुवाद**—अमृतपान का त्याग कर तथा विष को ग्रहण करके संसार में जिन्होंने मृत्युञ्जय (मृत्यु को जीतने वाले) इस उपाधि को प्राप्त किया एवं महलों में निवास की उपेक्षा कर आनन्द से श्मशान में रहने वाले उस देवाधिदेव (महादेव) का मैं आश्रयण करता हूँ।

(नान्थन्ते)

**सूत्रधारः :** अये, अभिरूपभूयिष्ठपरिषदमलङ्कुर्वाणाः
काव्यरसिकाः सम्प्रति तत्रभवन्तः

**लौकिकवृत्ताबद्धं नवमद्भुतपाणिग्रहणनामकम् ।**
**रामविलासचौधुरि-कृतं काव्यमास्वादयन्तु ॥ ३ ॥**

---

नान्द्याः अन्ते सूत्रधार इति। सूत्रं नाटकबीजं धारयतीति सूत्रधार प्रधानो नरः। अयमेव प्रथमं रङ्गभूमिं प्रविश्याभिनेयं सूचयति—अये।

**लौकिकवृत्ताबद्धमिति (अन्वयः)**—रामविलासचौधुरि-कृतं लौकिकवृत्ताबद्धं नवम् अद्भुतपाणिग्रहण नामकं काव्यम् आस्वादयन्तु।

**व्याख्या**—रामविलासचौधरीतिनाम्ना ख्यातेन विदुषा कृतं प्रणीतं लौकिक-वृत्ताबद्धम् लौकिकैः सांसारिकैः वृत्तैः प्रणयपरिणय—भिक्षणाध्ययनवर्ण—जाति-प्रभृतिविषयैः आबद्धं निर्मितं नवं नूतनम् अद्भुतपाणिग्रहणमिति समाख्यातं काव्यं दृश्यकाव्यं नाटकं वा भवन्तः सामाजिका आस्वादयन्तु आनन्दविषयं कुर्वन्तु।

वृत्तमत्रार्या। तल्लक्षणमेत्रमुक्तम्—
"यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या॥"

---

(अपने अपने) बैर भाव को छोड़कर, जिस (शङ्कर) के शरण में आये हुए देव और दानव प्रतिदिन उनका पूजन करते हैं उस भूतनाथ (शङ्कर) को हृदय में रख कर मन के सुख के लिए (इस) नाटक को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

**(नान्दी समाप्त होने पर)**

**सूत्रधार :** विशेषतः बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त इस सभा को अलंकृत करने वाले काव्यरसिको, इस समय आपलोग,

**(नेपथ्ये)**

चलतु, चलतु शीघ्रं चलतु । समयो विद्यतेऽल्पीयान्
पाठ्यविषयश्च महान् । नास्माभिर्विधेयो विलम्बः ।

**सूत्रधारः** : (विलोक्य) अये, किं नु खलु बहुलः कोलाहलःश्रूयते ? आम्, ज्ञातम् पटनाविश्वविद्यालयस्य स्नातक-परीक्षा विद्यते सन्निकटेति छात्राणां समवायो गच्छत्यापणं पुस्तकादिकं क्रेतुम् । किन्तु, सोमदत्त इत एवागच्छति भूदत्तेन समम् । तेनेदानीं निर्गमनीयम् ।

(इति निष्क्रान्तः)

।। इति प्रस्तावना ।।

(ततः प्रविशति भूदत्तेन समं सोमदत्तः)

---

सांसारिक घटनाओं (प्रेम, विवाह, भिक्षा, अध्ययन, वर्ण एवं जाति के वर्णन आदि) से युक्त एवं रामविलास चौधरी द्वारा रचित अद्भुतपाणिग्रहण नामक नये काव्य (नाटक) का आस्वादन करें ।

**(नेपथ्य में)**

चलिये, चलिये, जल्दी चलिये । समय कम है और पढ़ना बहुत है । हमलोगों को देर नहीं करनी चाहिये ।

**सूत्रधार** : (देखकर) अरे बहुत शोरगुल क्यों सुनाई पड़ रहा है ? हाँ समझा । पटना विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा नजदीक है । इसलिए छात्रगण पुस्तक आदि खरीदने के लिये दुकान में जा रहे हैं । किन्तु, भूदत्त के साथ सोमदत्त इधर ही आ रहा है । इसलिये अब निकलना चाहिए,

(निकल जाता है ।

।। प्रस्तावना ।।



(उसके बाद भूदत्त के साथ सोमदत्त प्रवेश करता है ।)

सोमदत्तः : कथय मित्र भूदत्त, कुत्र गन्तव्यं सम्प्रति ?
भूदत्तः : सखे, त्वामेवान्वेष्टुं चलितोऽहम् ।
सोमदत्तः : किमर्थम् ?
भूदत्तः : परीक्षा सन्निकटा वर्तते तेन किमपि नोटपत्रं त्वां याचितुमिच्छामि । नोटपुस्तकमेव वा देहि ।
सोमदत्तः : सखे, नाहं नोटसामग्रीं रचयामि, न च नोट पुस्तकं क्रीणामि, किन्तु प्रत्यहं पुस्तकालयं गत्वा सम्बद्धं मानकपुस्तकं पठामि ।
भूदत्तः : किमर्थमेवं कालं वृथा गमयसि ?
सोमदत्तः : सुहृद्वर, किं कथयसि ? त्वमेव चिन्तय । किम् प्रश्नोत्तरपुस्तकाध्ययनेन कोऽपि वैदुष्यं लब्धुमर्हति ?
भूदत्तः : किं भवति वैदुष्येण ? परीक्षायामुत्तमा अङ्कास्तु नागच्छन्ति वैदुष्यबलेन । तत्कृते नोटसामग्री रचनीया प्राप्तव्या वा तादृशयोग्यशिक्षकवर्यात् ।

---

सोमदत्त : कहो मित्र, भूदत्त, इस समय कहाँ चलना है ।
भूदत्त : मित्र, मैं तो तुमको ही खोजने के लिये चला हूँ ।
सोमदत्त : किसलिये ?
भूदत्त : परीक्षा नजदीक है । इस कारण कुछ नोट कापी तुमसे माँगना चाहता हूँ । अथवा नोट की किताब ही दे दो ।
सोमदत्त : सखे, न तो मैं नोट कापी बनाता हूँ और न नोट की किताब खरीदता हूँ, किन्तु पुस्तकालय में जाकर प्रतिदिन मानक पुस्तकें पढ़ा करता हूँ ।
भूदत्त : क्यों इस प्रकार व्यर्थ समय बिताते हो ?
सोमदत्त : मित्र क्या कहते हो ? तुम्हीं सोचो । प्रश्नोत्तर की किताबें पढ़ने से कोई भी विद्वत्ता प्राप्त कर सकता है क्या ?
भूदत्त : विद्वत्ता से क्या होता है ? परीक्षा में अच्छे अंक तो विद्वत्ता के बल से नहीं आते हैं । उसके लिये नोट कापी बनानी चाहिये या वैसे योग्य एवं वरीय शिक्षकों से प्राप्त करनी चाहिये ।

**सोमदत्तः** : किं संस्कृतशिक्षका अपि नोटसामग्रीं रचयन्ति ?

**भूदत्तः** : रचयन्ति कथं नु खलु, किन्तु ददति नहि निर्मूल्यम् ।

**सोमदत्तः** : संस्कृत शिक्षका अपि वणिजः जाता किम् ?

**भूदत्तः** : कथं न भवेयुस्ते तथा ? सचिवालयेषु समाहरणालयेषु अन्य-कार्यालयेषु वा तेषां कार्यमुत्कोचं विना सम्पद्यते किम् ? तेषां सन्ततयः विपुल-द्रव्यं विना चिकित्साशिक्षाम् अभियन्त्रणाशिक्षां वा लब्धुमर्हन्ति किम् ? किं बहुना, प्रचुरं दायाजं विना तेषां कन्यकानां पाणिग्रहणमपि न सम्भवति ।

**सोमदत्तः** : (ऊर्ध्वं निःश्वस्य) तर्हि सकलमादर्शवाक्यम् आर्षवचनञ्च व्यर्थमेव जातम् ।

**भूदत्तः** : सोमदत्त, अलमेतेन चिन्तनेन । परिगृहाणैतद् बुद्धिवर्धकं चूर्णं तमालपत्रस्य । (तद् ददाति)

**सोमदत्तः** : नाहं गृह्णामि तमालपत्रम् ।

---

**सोमदत्त** : क्या संस्कृत शिक्षक भी नोट लिखते हैं ?

**भूदत्त** : लिखते क्यों नहीं ? किन्तु बिना पैसे के देते नहीं ।

**सोमदत्त** : संस्कृत शिक्षक भी व्यवसायी हो गये क्या ?

**भूदत्त** : क्यों न होवें वैसे ? सचिवालयों में समाहरणालयों में या दूसरे कार्यालयों में उनके कार्य बिना रिश्वत के होते हैं क्या ? उनकी सन्तान पर्याप्त पैसे के बिना चिकित्सा शिक्षा या अभियन्त्रणा शिक्षा प्राप्त कर सकती है क्या ? बहुत क्या कहा जाए ? काफी दहेज के बिना उनकी बेटियों का विवाह भी सम्भव नहीं होता ।

**सोमदत्त** : (लम्बी साँस लेकर) तब तो सभी आदर्श वाक्य और ऋषियों के वचन निरर्थक हो गये ।

**भूदत्त** : सोमदत्त, सोचना बेकार है । यह लो बुद्धिवर्द्धक चूर्ण तम्बाकु का । (उसे देता है)

**सोमदत्त** : मैं तम्बाकु नहीं लेता हूँ ।

भूदत्तः : श्रृणुः यस्तमालपत्रं न गृह्णाति, तस्य बुद्धिः नो विवर्धते। पुनश्चेदन्तु स्वर्गेऽपि नोपलभ्यते।

सोमदत्तः : भवतु नाम, भूलोके यदि नो लाभस्तर्हि स्वर्गः केन दृष्टः ?

भूदत्तः : मैवं ब्रूहि। तमालस्य महिमा पुराणेऽपि वर्णितः।

**उक्तञ्च—**

**बिडौजाः पुरा पृष्टवानब्जयोनिं**
**धरित्रीतले सारभूतं किमस्ति।**
**चतुर्भिर्मुखैरुत्तरं तेन दत्तं**
**तमालं तमालं तमालं तमालम् ॥ ४ ॥**

( इति निष्क्रान्तौ )

इति प्रथमोऽङ्कः।

---

**बिडौजा इति** (**अन्वयः**)—बिडौजाः पुरा अब्जयोनिं पृष्टवान्—धरित्रीतले सार भूतं किमस्ति ? तेन चतुर्भिः मुखैः उत्तरं दत्तं—तमालं तमालं तमालं तमालम्।

**व्याख्या**—'बिडौजाः बिडं भेदकम् ओजो बलं यस्य स इन्द्रः अथवा विट्सु प्रजासु मनुष्येषु वा ओजोऽस्येति बिडौजा इन्द्रः ('इन्द्रो मरुत्वान् मघवा बिडौजाः पाकशासनः' इत्यमरः) पुरा प्राचीनकाले अब्जयोनिम् अब्जं कमलं योनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य तं विधातारं ('धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः' इत्यमरः) पृष्टवान् अपृच्छत् यत् धरित्रीतले धरित्र्याः पृथिव्याः तले (ष० त०) सारभूतं श्रेष्ठभूतं तत्त्वं किमस्ति ? तदा तेन विधात्रा चतुर्भिः चतुःसंख्यकैः मुखैः (ब्रह्मणः चत्वारि मुखानि सन्ति तेन स चतुर्मुखः कथ्यते) उत्तरं दत्तम् उत्तरितं तमालं तमालपत्रम् तमालपत्रं तमालपत्रं तमालपत्रम्।

---

**भूदत्त** : सुनो, जो तम्बाकु नहीं लेता है। उसकी बुद्धि बहुत नहीं बढ़ती है। फिर, यह तो स्वर्ग में भी नहीं मिलता है।

**सोमदत्त** : होवे, यदि पृथ्वीलोक में (तम्बाकु से) कोई लाभ नहीं है तो स्वर्ग को किसने देखा है ?

**भूदत्त** : ऐसा मत कहो तम्बाकु की महिमा पुराण में भी वर्णित है। कहा भी है—

## द्वितीयोऽङ्कः

(सोमदत्तः पुस्तकालये पुस्तकमधीयानो विद्यते)

(तत्र प्रविशति श्यामा बैगं वहन्ती)

**श्यामा** : (सोमदत्तं विलोक्यात्मगतम्) अये आकृत्या रमणीयोऽयं युवा अध्ययने दत्तचित्तो वर्तते। तावदेनम् उपसर्पामि (उपसृत्य) (प्रकाशम्) सोमदत्त, नमस्तुभ्यम्।

**सोमदत्तः** : नमस्ते श्यामे, समुपविश, ब्रूहि च को वृत्तान्तः ?

---

एतेन व्यक्तं यद् ब्रह्मा निजैः चतुर्भिः मुखैः तमालस्य महिमानं गायति तेनेदं वरेण्यं वस्तु विद्यते। अत्र भुजङ्गप्रयातं वृत्तम्। तल्लक्षणमेवम्—

"भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।"

---

प्राचीनकाल में इन्द्र ने ब्रह्मा से पूछा पृथ्वीतल पर सबसे सारवान् वस्तु क्या है ? (इसपर) ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से उत्तर दिया—तम्बाकु, तम्वाकु, तम्बाकु, तम्बाकु)।

(दोनों निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

——

## द्वितीय अङ्क

(सोमदत्त पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ रहा है)

(श्यामा बैग ली हुई वहाँ प्रवेश करती है)

**श्यामा** : (सोमदत्त को देख कर मन ही मन) अहो, आकृति से सुन्दर यह युवक पढ़ने में तल्लीन है। तब तक इसके पास जाती हूँ। (नजदीक जाकर) (जोर से) सोमदत्त, तुझे नमस्कार है।



**सोमदत्त** : श्यामे, नमस्कार। बैठो। कहो क्या समाचार है।

श्यामा : (उपविश्य) धन्यवादः। परीक्षा समीपे विद्यते तेन तत्कृते पुस्तकानि अन्वेषणीयानि सन्ति। किं त्वं सर्वं पुस्तकमधीतवानसि ?

सोमदत्तः : सम्यगधीतवानस्मि।

श्यामा : किं त्वं काव्यमपि रचयसि चारूतरम् ?

सोमदत्तः : काव्यं चारूतरं न रचयामि किन्तु पद्यं घटयामि।

श्यामा : साधु तर्हि हृद्यं पद्यं श्रावणीयं किमपि।

सोमदत्तः : पद्यं तव हृद्यं भविष्यति न वेति न जाने किन्तु काव्यकारो भावुकं श्रोतारं प्राप्य नावसरं त्यजतीति प्रसिद्धमेव। तेन श्रूयतामिदानीम् (तामभिलक्ष्य)

**दिवा भाति पद्मञ्च नक्तन्तु चन्द्रः**
**प्रफुल्लं सदा रूपमेतद्वरेण्यम्।**
**धनानां धरित्री त्वमेवासि गौरि,**
**परे याचका अन्तिकन्ते व्रजन्ति ॥ १ ॥**

---

दिवेति (अन्वयः)—पद्मं दिवा भाति चन्द्रश्च नक्तम् तु एतत् वरेण्यं रूपं सदा प्रफुल्लम्। हे गौरि, त्वमेव धनानां धरित्री असि, परे (तु) याचकाः ते अन्तिकं व्रजन्ति।

---

श्यामा : (बैठकर) धन्यवाद, परीक्षा निकट है। अतः उसके लिये किताब खोजनी है। क्या तुमने सभी किताबें पढ़ी हैं।

सोमदत्त : ठीक से पढ़ा हूँ।

श्यामा : क्या तुम सुन्दर काव्य भी बनाते हो ?

सोमदत्त : सुन्दर काव्य नहीं बनाता हूँ, किन्तु पद्य जोड़ता हूँ।

श्यामा : अच्छा, तब कुछ रुचिकर पद्य सुनाओ।

सोमदत्त : पद्य रुचिकर होगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता हूँ किन्तु कवि भावुक श्रोता को पाकर अवसर नहीं गवाँता है, यह बात प्रसिद्ध है। अतः अब सुनो (उसे लक्षित कर)।

(श्यामा लज्जां नाटयति)

**सोमदत्तः** : श्यामे, किमेवं सङ्कुचितासि ? यदि मया किमप्यनुचित-माचरितं क्षमस्व तर्हि ।

---

**व्याख्या**--पद्मं कमलं दिवा दिने भातिशोभते चन्द्रः चन्द्रमाः ('हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धव' इत्यमरः) नक्तं रात्रावेव न तु दिने मनोहरति । तु किन्तु एतत् पुरोदृश्यमानं वरेण्यं स्पृहणीयं तव रूपं सौन्दर्यं सदा सततं प्रफुल्लं विकसितं मनोहारि वा विद्यते । हे गौरि गौराङ्गि गौरवर्णा वा त्वमेव धनानां रूपसम्पदां धरित्री धारयित्री भूमिः सौन्दर्यजननी लावण्यमयी वा वर्तसे परे अपरे जनाः केवलं याचकाः त्वदीयरूपलुब्धाः भूत्वा ते तव सुन्दर्याः अन्तिकं समीपे व्रजन्ति इतस्ततः भ्रमन्तितव लावण्यपानार्थम् ।

**तात्पर्यम्**---एतेन व्यक्तं यत् कमलं दिवस एव मनोहरं भवति रात्रौ सङ्कोचात् सुन्दरं न प्रतीयते । चन्द्रमाः रात्रावेव कलावान् भवति दिने तिरोधानान्न मोहको जायते किन्तु तव मनोज्ञाया अतिशयेन विकसितं रूपं दिनेऽपि रात्रावपि चित्तं हरति । हे शोभनाङ्गि, त्वमेव केवलं रूपसम्पदां स्वामिनी वर्तसे । अपरे अनुरागवन्तो जनाः याचकाः सन्तः तव स्नेहदृष्टिमिच्छन्तः पार्श्वे भ्रमन्ति ।

रतिस्थायिभावस्याभिव्यक्तेः शृङ्गारो रसो व्यंग्यः । पूर्वार्द्धे कमलात् चन्द्राच्च कामिन्याः रूपस्याधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकालङ्कारः । उत्तरार्द्धे कार्यकारणवर्णनात् काव्यलिङ्गः । वृत्तमत्र भुजङ्गप्रयातम्-'भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः' इति लक्षणात् ।

---

कमल दिन में मन को भाता है तो चन्द्रमा रात में । किन्तु तुम्हारा यह अत्यन्त स्पृहणीय सौन्दर्य सदा ही प्रफुल्लित रहता है । हे गौरि, रूपसम्पत्ति की भूमि (खजाना) तुम्ही हो । दूसरे (प्रेमीजन) याचक बने हुए तुम्हारी स्नेहमयी दृष्टि के लिए तुम्हारे पास मँडराते रहते हैं ।

(श्यामा लज्जा का अभिनय करती है)

**सोमदत्त** : श्यामे, क्यों इस तरह सिमट गयी हो ? यदि मुझसे कुछ अनुचित आचरण हो गया है तो क्षमा कर दो ।

**श्यामा** : मैवं वक्तव्यम् । पद्येऽस्मिन् भावप्रवणतां गाने च ते कण्ठ-मधुरतामभिलक्ष्य नितरां प्रमुग्धास्मि ।

**सोमदत्तः** : साधु, श्यामे, कथय, त्वं मां कथं सम्भावयसि ।

**श्यामा** : तव समुत्कृष्टं रूपलावण्यं मधुरां प्रकृतिं निरन्तरम् अध्ययनशीलत्वञ्च विलोक्य कामये यत् कापि सौभाग्य-शालिनी बाला त्वां वृणुयात् ।

**सोमदत्तः** : किमयं वर आशीः वा ।

**श्यामा** : न वरो न चाशीः किन्तु हृदयोद्गारः ।

**सोमदत्तः** : श्यामे, नाहं तादृशो भाग्यभाग्जनः ।

**श्यामा** : कथमेतत् । संसारे किमस्ति विरलत्वं काम्यवस्तुनाम् ?

**सोमदत्तः** : विरलत्वन्तु नास्ति परं तत्प्राप्तौ सन्ति कृतार्थाः कियन्तो जनाः ? पश्य,

**विधात्रा कृतं सर्वसम्पन्नरम्यं**
**जगत्किन्तु लब्धं मनोवाञ्छितं वै ।**
**तदल्पेन पुंसाखिलं भाग्य भाजा—**
**नुकूलं न सर्वस्य दिष्टं नरस्य ॥ २ ॥**

---

**श्यामा** : ऐसा मत कहो । इस पद्य में तुम्हारी भावसम्पन्नता और तुम्हारे गान में कण्ठमधुरता को देखकर अत्यन्त मुग्ध हो गयी हूँ ।

**सोमदत्त** : अच्छी बात है । श्यामे, कहो तुम मेरे बारे में क्या सोचती है ।

**श्यामा** : तुम्हारे उत्कृष्ट रूप सौन्दर्य, मधुर स्वभाव और निरन्तर अध्ययन-शीलता को देखकर सोचती हूँ कि कोई अत्यन्त सौभाग्यशीलिनी बाला तुम्हें वरण करे ।

**सोमदत्त** : क्या यह वरदान है या आशीर्वाद ?

**श्यामा** : न वरदान है न आशीर्वाद, किन्तु हृदय का उद्गार है ।

**सोमदत्त** : श्यामे, मैं वैसा भाग्यशाली व्यक्ति नहीं हूँ ।

**श्यामा** : यह कैसे ? संसार में इच्छानुकूल वस्तु की कमी है क्या ?

**सोमदत्त** : कमी तो नहीं है, परन्तु उसको पाने में कितने लोग समर्थ है ? देखो—

**श्यामा** : लक्ष्यम्प्रति दृढा प्रवृत्तिः प्रयत्नश्च महान् भवेत्तर्हि किमनवाप्यम् भवति ?

---

**विधात्रा कृतमिति** (अन्वयः)—विधात्रा (इदं) जगत् सर्वसम्पन्नरम्यं कृतं किन्तु अल्पेन भाग्यभाजा पुंसा अखिलं तद् मनोवाञ्छितं (वस्तु) लब्धम् (भवति)। सर्वस्य नरस्य दिष्टम् अनुकूलम् (एव) न (भवति)।

**व्याख्या**—विधात्रा प्रजापतिना ब्रह्मणा वा ('स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः' इत्यमरः) इदं पुरोदृश्यमानं जगत् संसारः सर्वसम्पन्नरम्यं सर्वं सम्पन्नं रम्यञ्च कृतं निर्मितं किन्तु अल्पेन केनापि भाग्यभाजा भाग्यं भजतीति भाग्यभाक् तेन सौभाग्यशालिना पुंसा पुरूषेण अखिलं समस्तं तच्चिन्तितं मनोवाञ्छितं मनसा चित्तेनाभिलषितं वस्तु लब्धं प्राप्तं क्रियते इति शेषः। यतः सर्वस्य नरस्य मनुष्यस्य दिष्टं भाग्यम् ('दैवं दिष्टं भागधेयम्' इत्यमरः) अनुकूलं दक्षिणं यथेष्टं वा न भवति।

एतेन ज्ञायते यत् ब्रह्मणा इदं जगत् सर्वथा सम्पन्नं रमणीयञ्च रचितं किन्तु केचन मनुष्या एव सर्वम् अभिलषितं वस्तु प्राप्नुवन्ति। यतः सर्वेषां जनानां भाग्यम् अनुकूलं न भवति परञ्च कश्चन भाग्यवान् नर एव सर्वं समीहितं वस्तु प्राप्तुं योग्यो भवति।

अत्र विशेषकथनस्य समर्थनं सामान्यकथनेन भवतीत्यर्थान्तरन्यासालङ्कारः। तल्लक्षणमेवम्-'उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात्सामान्यविशेषयोः।' इति। वृत्तमत्र भुजङ्गप्रयातम्।

---

विधाता ने संसार को सभी (वस्तुओं) से सम्पन्न और रमणीय बनाया है, किन्तु थोड़े से भाग्यशाली व्यक्ति ने ही उन सभी मनोवांछित वस्तुओं को पाया है क्योंकि सभी मनुष्य का भाग्य अनुकूल नहीं होता है।

**श्यामा** : लक्ष्य के प्रति अचल रूझान हो और प्रयत्न महान् हो तो क्या नहीं प्राप्त होता है ?

**सोमदत्तः** : नहि प्रयत्नेन प्रवृत्या वा काको भवति क्वचिच्छुकः ।
**श्यामा** : त्वया विवदितुं नाहं समर्था ।
**सोमदत्तः** : श्लाघ्यः प्रयासस्त्याज्यः किमत्र ?
**श्यामा** : सोमदत्त, श्रृणु तावत्, ते भूयान् समयोऽतिवाहितो वृथैव मया । तेन ……
**सोमदत्तः** : 'तेन' इति किं विवक्षसि ?
**श्यामा** : सत्यवसरे केनापि प्रयोजनेनानुग्राह्योऽयञ्जनः ।
**सोमदत्तः** : धन्यवादाः, रक्षितव्योऽयं वचनन्यासः ।
**श्यामा** : समयो भविता साक्षी ।

(उभौ प्रस्थितौ)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

---

**सोमदत्त** : प्रयास या रुचि से कौआ कहीं सुग्गा नहीं बनता ।
**श्यामा** : तुम्हारे साथ विवाद करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ।
**सोमदत्त** : प्रशंसनीय प्रयास इसमें क्यों छोड़ रही हो ?
**श्यामा** : सोमदत्त, सुनो, बहुत तुम्हारा समय मैंने व्यर्थ ही बिता दिया । इसलिए……
**सोमदत्त** : 'इसलिये' इस शब्द से क्या कहना चाहती हो ?
**श्यामा** : मौका आने पर कोई जरूरत बताकर मुझे अनुगृहीत करना ।
**सोमदत्त** : धन्यवाद, इस वचन को धरोहर रूप में रखना ।
**श्यामा** : समय ही साक्षी होगा ।

( दोनों प्रस्थान कर जाते हैं )

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

——

## तृतीयोऽङ्कः

(ब्रह्मदत्तस्य पुत्री सुनयना महाविद्यालयं गच्छति किन्तु मार्गे वाहनं न प्राप्य पादाभ्यामेव चलति)

**सुनयना** : (आत्मगतम्) भास्करोऽयं तपति ललाटे। उष्णतापि विवर्धते। इदानीं यावत् किमपि वाहनं नोपलब्धम्, किं करोमि ? (निरूप्य) भवतु दृष्टम्। आगच्छति एको रिक्साचालकः, किन्तु न जाने किं कथयिष्यति ? भवतु यत्किमपि कथयेत्। तावदेनम् पृच्छामि। (प्रकाशम्) भो भो, रिक्साचालकमहोदय, कुत्र गमिष्यसि ?

**रिक्साचलकः** : (प्रविश्य) अहं कुत्रापि गमिष्यामि तेन तव किम् ? स्वर्गं वा नरकं वा, यत्र याता मिलिष्यति, तत्रैव गमिष्यामि। (निपुणं निरीक्ष्य) भवती कुत्र गमिष्यति ?

---

## तृतीय अङ्क

(ब्रह्मदत्त की पुत्री सुनयना महाविद्यालय जा रही है, किन्तु रास्ते में सवारी नहीं पाकर पैदल ही चलती है।)

**सुनयना** : (मन ही मन) सूर्य कपार पर आ गये हैं। गर्मी भी बहुत बढ़ती जाती है। अब तक कोई वाहन नहीं मिला। क्या करूँ ? (देखकर) अच्छा दिखाई पड़ा। एक रिक्साचालक आ रहा है, किन्तु न जाने, क्या कहेगा ? अच्छा, जो भी कहे तब तक इसे पूछती हूँ। (जोर से) ओ, रिक्साचालक महोदय, कहाँ जाओगे ?

**रिक्साचालक** : (प्रवेश करके) मैं कहीं भी जाउँगा, इससे तुम्हारा क्या ? स्वर्ग या नरक, जहाँ जानेवाला मिलेगा, वहीं चला जाऊँगा। (ठीक से देखकर) आप कहाँ जाएँगी ?

सुनयना : नाहं स्वर्गं गमिष्यामि। न वा नरकं, किन्तु महाविद्यालयं गन्तुमिच्छामि।

रिक्साचालकः : तर्हि एकत्रैव द्वयोरनुभवः।

सुनयना : कथमेतत् ?

रिक्साचालकः : छात्रैश्छात्राभिश्च एकान्ते मधुरालापोऽपरञ्च परिहासादिकं वादामभुञ्जानञ्च मनोरञ्जनं स्वर्गसुखावहम्। छात्रेषु कलहो घात-प्रतिघातश्च नरकानुभवप्रदो भवति।

सुनयना : त्वं कथमेतत् सकलं भणसि ?

रिक्साचालकः : अहमपि पटनामहाविद्यालयेऽधीयान आसम्। स्नातकपरीक्षा मया समुत्तीर्णा, किन्तु रिक्सा-चालनेनोदरपूर्तिं करोमि।

सुनयना : त्वं प्रशासनिकसेवार्थं कथं न चेष्टसे ?

---

सुनयना : मैं न तो स्वर्ग जाऊँगी और न नरक, किन्तु महाविद्यालय जाना चाहती हूँ।

रिक्साचालक : तब तो एक जगह ही दोनों का अनुभव हो गया।

सुनयना : यह कैसे ?

रिक्साचालक : छात्र और छात्राओं के साथ एकान्त में मधुर बातचीत और दूसरे हँसी मजाक तथा बादाम भूँजा एवं मनोरञ्जन स्वर्ग का सुख देता है। छात्रों में झगड़ा और मारपीट नरक का अनुभव कराता है।

सुनयना : तुम यह सब कैसे कहते हो ?

रिक्साचालक : मैं भी पटना महाविद्यालय में पढ़ता था। स्नातक परीक्षा मैंने उत्तीर्ण कीं, किन्तु रिक्सा चलाकर पेट भरता हूँ।



सुनयना : तुम प्रशासनिक सेवा के लिए प्रयास क्यों नहीं करते हो ?

**रिक्साचालकः** : नहि नहि सेवावृत्तौ महत्कष्टम् । तेन सेवा श्ववृत्तिराख्याता । पुनश्च उत्कोचं विना न भवति नियोजनं क्वापि ।

(ततः प्रविशति कान्तिरामः)

**कान्तिरामः** : सुनयने, किं त्वं महाविद्यालयं गमिष्यसि ?

**सुनयना** : आम्, तत्र गन्तव्यं विद्यते ।

**रिक्साचालकः** : (आत्मगतम्) कपोती कपोतं प्राप्तवती । नात्र मत्कृतेऽवकाशः (इति निर्गच्छति) ।

**कान्तिरामः** : सुनयने, गतो रिक्साचालकः । किं त्वं मया सह चलिष्यसि स्कूटरयानेन ?

**सुनयना** : कथन्न ? कोऽत्र दोषः ?

**कान्तिरामः** : किन्तु मया समं त्वयि गते जनाः किं कथयिष्यन्ति ?

---

**रिक्साचालक** : नहीं, नहीं, नौकरी पेशा में बहुत दुःख है । इसलिए नौकरी को कुत्ते की वृत्ति कहा गया है । फिर रिश्वत के बिना कहीं नियुक्ति भी नहीं होती है ।

**(उसके बाद कान्तिराम प्रवेश करता है)**

**कान्तिराम** : सुनयने, क्या तुम महाविद्यालय जाओगी ?

**सुनयना** : हाँ, वहाँ जाना तो है ।

**रिक्साचालक** : (मन ही मन) कबूतरी ने कबूतर को पा लिया । यहाँ मेरे लिए जगह नहीं है । (निकल जाता है) ।

**कान्तिराम** : सुनयने, रिक्शाचालक तो चला गया । क्या तुम मेरे साथ स्कूटर से चलोगी ?

**सुनयना** : क्यों नहीं ? इसमें दोष क्या है ?



**कान्तिराम** : लेकिन मेरे साथ तुझे जाने पर लोग क्या कहेंगे ?

सुनयना : जनानां कथनेन किम् ? ते तु रामं कृष्णं सीतां द्रौपदीञ्चापि दूषयन्ति ।

कान्तिरामः : ते महामानवा आसन् । न तैः साकं तुलनीयो मादृशो निम्नजातीयः ।

सुनयना : नैवम् वक्तव्यं कदाचन । यतो नहि भवति कोऽपि जात्या निम्नो महान् वा ।

कान्तिरामः : कथमेतद् ब्रवीषि त्वम् ?

सुनयना : त्वमेव कथय । वाल्मीकेरगस्त्यस्य च का जातिरासीत् ? शूद्रायां समुत्पन्नो व्यासो विदुरश्च किं पूज्यतां न जगाम ? सूतः सूतपुत्र एवासीत् किन्तु मुनीनां बहुमान्योऽभवत् ।

कान्तिरामः : त्वं पुरातनीं वार्तां ब्रूषे कोऽद्य तां बहुमन्यते ?

सुनयना : तथ्यन्तु तथ्यमेव भवति । प्राचीनं भवेन्नूतनं वा ।

---

सुनयना : लोगों के कहने से क्या ? वे तो राम, कृष्ण, सीता और द्रौपदी को भी दोष देते हैं ।

कान्तिराम : वे महामानव थे । उनके साथ मेरे जैसे नीच जाति की तुलना नहीं करनी चाहिए ।

सुनयना : ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए क्योंकि जाति से कोई नीच या महान् नहीं होता है ।

कान्तिराम : तुम ऐसा कैसे कहती हो ?

सुनयना : तुम्हीं बताओ—बाल्मीकि और अगस्त्य की जाति क्या थी । शूद्रा में उत्पन्न व्यास और विदुर क्या पूज्य नहीं हुए ? सूतजी सूतपुत्र ही थे, किन्तु मुनियों के आदरणीय थे ।

कान्तिराम : तुम पुरानी बातें कहती हो । आज उसे कौन आदर करता है ।



सुनयना : तथ्य तो तथ्य ही होता है । चाहे प्राचीन हो या नवीन ।

कान्तिरामः : कः श्रद्दधाति प्राचीनं तथ्यम् ?

सुनयना : किमेवं कथयसि ? आधुनिकयुगेऽपि कबीरः दादुः दयालोऽम्बेडकरश्च किं न सम्मान्यते जनैः ।

कान्तिरामः : एतेन त्वं किमभिप्रैषि ?

सुनयना : तत्तु स्पष्टम् । महत्ता कर्मणा भवति न तु जात्या ।

कान्तिरामः : सुनयने, तव ज्ञानवैभवं तर्कशक्तिञ्च समीक्ष्य नितरां विस्मितोऽस्मि । तेन त्वत्कृते किमपि कर्तुमुत्कायते मे मनः ।

सुनयना : कान्तिराम, तव सौम्यत्वं नितरां प्रशंसनीयं विद्यते ।

कान्तिरामः : धन्यवादाः । सम्प्रति कथय, त्वत्प्रीत्यर्थं मया किमनुष्ठेयम् ?

सुनयना : नहि सम्प्रति किमपि । केवल महाविद्यालयं चल ।

कान्तिरामः : किन्तु समये नहि सङ्कोचं करिष्यसीति प्रत्येमि किम् ?

---

कान्तिराम : पुराने तथ्य पर कौन श्रद्धा करता है ?

सुनयना : ऐसा क्यों कहते हो ? आधुनिक काल में भी कबीर, दादु, दयाल और अम्बेडकर लोगों के द्वारा सम्मानित नहीं होते क्या ?

कान्तिराम : इससे तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

सुनयना : वह तो स्पष्ट है । महत्ता कर्म से होती है जाति से नहीं ।

कान्तिराम : सुनयने, तुम्हारे ज्ञान वैभव और तर्कशक्ति को देखकर अत्यन्त चकित हूँ । इसलिए तुम्हारे लिए कुछ करने को मेरा मन उत्सुक है ।

सुनयना : कान्तिराम, तुम्हारी मृदुलता अत्यन्त सराहनीय है ।

कान्तिराम : धन्यवाद । अब कहो—तुम्हारी प्रसन्नता (प्रेम) के लिए मैं क्या उपाय करूँ ?

सुनयना : इस समय कुछ नहीं । केवल महाविद्यालय चलो ।

कान्तिराम : लेकिन समय पर संकोच नहीं करोगी, यह विश्वास रखूं क्या ?

सुनयना : कः प्रत्ययो भावुकानां जनानां त्वादृशानाम् ?
कान्तिरामः : सुनयने, त्वदर्थं प्राणदानेऽपि मम हर्ष एव भविष्यति।
सुनयना : कथनं सरलं किन्तु समये परीक्षितो भविष्यसि।
कान्तिरामः : किमिदानीमपि सन्देहः ?
सुनयना : नास्ति सन्देहः किन्तु ?

**मधुकरः परिचुम्ब्य जहाति किं**
**सुमधुरां कलिकां न मधौ पुनः।**
**प्रणयभावरतामपि राधिका—**
**मगणयन् मथुरां न गतो हरिः॥ १॥**

कान्तिरामः : अस्तु प्रतीक्षा फलदायिनी। सम्प्रति चलावः महाविद्यालयम्।

(निष्क्रान्तौ)

(इति तृतीयोऽङ्कः)

---

**मधुकर इति (अन्वयः)**—मधुकरः मधौ समधुरां कलिकां परिचुम्ब्य पुनः किं न जहाति ? प्रणयभावरतामपि राधिकाम् अगणयन् हरिः मथुरां न गतः।

---

सुनयना : तुम्हारे जैसे भावुक लोगों का क्या विश्वास ?
कान्तिराम : श्यामे, तुम्हारे लिए प्राण देने में भी मुझे खुशी ही होगी।
सुनयना : कहना आसान है, किन्तु समय पर परीक्षा होगी।
कान्तिराम : क्या अब भी सन्देह है ?
सुनयना : सन्देह नहीं, किन्तु—

भौरा वसन्त ऋतु में मधुर कली का चुम्बन कर क्या फिर उसे छोड़ नहीं देता है ? प्रेम भाव में लीन राधा की चिन्ता नहीं करते हुए श्रीकृष्ण मथुरा नहीं गए ? अर्थात् निश्चय ही चले गये।

कान्तिराम : होवे, प्रतीक्षा फल देने वाली होती है। अब महाविद्यालय चलते हैं।

**व्याख्या**—मधुकरः मधु करोतीति मधुकरः भ्रमरः मधौ वसन्ते ऋतौ सुमधुरां रमणीयां कलिकां पुष्पकलिं परिचुम्ब्य परितः सर्वतः चुम्बनं कृत्वा पुनः कालान्तरे किं न जहाति-त्यजति । अर्थात् त्यजत्येव, प्रणय भावरताम्-प्रेम भावे निमग्नाम् अपि राधिकाम् राधाम् अगणयन् अविचारयन् राधायाः दृढं प्रेम उपेक्षमाण इत्यर्थः हरिः श्रीकृष्णः गोकुलं विहाय मथुराम् मथुरा-नाम्नीं नगरीं न गतः अर्थात् गत एवेति व्यज्यते ।

तात्पर्यमिदं यद् वसन्ते ऋतौ भ्रमरः अर्द्धविकसितां कमनीयां कुसुमकलिं भूरिशः चुम्बति किन्तु कालान्तरे तां त्यक्त्वा अन्यत्र गच्छति । श्रीकृष्णस्य प्रेम्णि एकाग्रचित्तां राधाम् विहाय तस्याः प्रेमप्रसङ्गं तिरस्कुर्वन् स हरिः गोकुलं परित्यज्य एकाकी एव मथुरां गतः न तु राधां प्राणयत् ।

अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः दृष्टान्तश्च ।

छन्दश्चात्र द्रुतविलम्बितम् । तल्लक्षणमेवम्

'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ॥

( दोनों निकल जाते हैं )

॥ तृतीय अङ्क समाप्त हुआ ॥'

——

## चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति भिक्षां याचमानो भिक्षुक एकः)

भिक्षुः : देहि भो देहि, आत्मने देहि, परमात्मने देदि। निजस्य कृते देहि परिजनस्य कृते देहि। अस्तु, इदानीं गीतमेकं गायामि—

मानवदेहे वर्या वृत्तिर्नित्यम् भिक्षाग्रहणम्।
भारतभूमौ दातॄणामपि नैवास्ते बिरलत्वम्॥
दातारो बहवः सञ्जाताश्शिवदधीचिहरिश्चन्द्राः।
वक्षःपललं कुल्यं राज्यं दत्त्वापि प्रमुदिताः॥ १॥
मानवदेहे वर्या वृत्तिः ……

कर्षणकर्मणि ये नहि शक्ता अध्ययनाच्च विरक्ताः
वणिजश्चापि कार्यं कर्तुं सेवाकार्येऽशक्ताः॥
सर्वे ते नेतारो जाता विविधव्याजनिष्णाताः।
साहायार्थं सहयोगञ्च लोकमतं याचन्ते॥ २॥
मानवदेहे वर्या वृत्तिः ……

सर्वं चैतद् भिक्षणमेव येन नास्ति किमप्यसाध्यम्।
आगच्छन्तु प्रचालयन्तु भिक्षूणामपि संघम्॥
सौख्ये वृद्धौ रम्यनिवासो भ्रमणे बहुलं द्रव्यम्
संघेनैव सर्वं साध्यं राज्यञ्च नेतृत्वम्॥ ३॥
मानवदेहे वर्या वृत्तिः ………

---

## चतुर्थ अङ्क

(उसके बाद भीख माँगता हुआ एक भिखारी प्रवेश करता है।)

भिखारी : दे दो, अरे, दे दो, आत्मा के लिए दो। परमात्मा के लिए दो। अपने लिए दो, परिजन जन के लिए दो। अच्छा अब मैं एक

**चाटुकारिता न जातु धार्या नैवोपेक्षा सह्या।**
**दातारम्प्रति नूनं वाच्यम् 'धन्यवाद' इति वचनम्।**
**भिक्षणवृत्तौ मूलं चैतत्सूत्रं ध्येयं सततम्**
**एतेनैव याच्ञामार्गे लक्ष्यं साध्यं निरतम्॥४॥**
**मानवदेहे वर्या वर्त्तिर्नित्यम् भिक्षाग्रहणम्**

---

गीत गाता हूँ—मानव शरीर में सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय है—रोज भिक्षा प्राप्त करना। भारत भूमि में दाताओं का भी अभाव नहीं है। यहाँ बहुत सारे दानी—शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए जो क्रमशः छाती का मांस, हड्डी और राज्य देकर भी प्रसन्न रहे (१) जो व्यक्ति खेती का काम करने में समर्थ नहीं है और अध्ययन से भी जी चुराने वाला है तथा व्यापार भी नहीं कर सकता है एवम् नौकरी के योग्य नहीं है—वे सभी नेता बन गये तथा अनेक छल-कपट में निपुण हो गये। सहायता के लिए धन सहयोग और लोकमत (वोट) मांगते फिरते हैं (२)। मानव शरीर में……) यह सब भिक्षा ही तो है जिस (भिक्षा) से कुछ भी असाध्य नहीं है आइये, भिखारियों का भी संघ चलावें। सुविधा में बढ़ोत्तरी, अच्छे मकान, घूमने के लिए पर्याप्त पैसे तथा राज्य और नेतृत्व भी सब कुछ संघ के द्वारा ही प्राप्त करने योग्य होते हैं। मानव शरीर में……। ३।

कभी न तो खुशामदी बात करनी चाहिये और न उपेक्षा ही सहनी चाहिये। देने वाले के प्रति 'धन्यवाद' वचन अवश्य बोलना चाहिये। भिक्षा व्यवसाय में यह मूल सूत्र हमेशा ध्यान में रखना चाहिये। याचना के मार्ग में इसी से अपना लक्ष्य सदा साधने योग्य बनता है (४)। मानव शरीर में सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय है—रोज भिक्षा प्राप्त करना।

**सोमदत्तः** : (प्रविश्य भिक्षुकञ्च विलोक्य) भो भिक्षो, त्वदीयं गानं नितरां मधुरं भावपूर्णञ्च विद्यते, किन्तु वस्त्रेण त्वं दीनो न प्रतीयसे पुनरपि भिक्षां कथं याचसे ?

**भिक्षुः** : भो भावुक, नूनमेव मुग्धोऽसि ।

**सोमदत्तः** : कथमेवं कथयसि ?

**भिक्षुः** : किन्न श्रुतम् भवता यत् सागरमन्थनसमये पीताम्बरो विष्णुः लक्ष्मीं लेभे दिगम्बरश्च भूतेशो विषमेवाधिजगाम ।

**सोमदत्तः** : साधु चिन्तितन्त्वया । वासश्चेद् बहुमूल्यं तर्हि भिक्षणमपि विशिष्टमेव भविष्यति ।

**भिक्षुः** : आम्, यत्किमपि न गृह्णामि किन्तु ग्राह्यमेव द्रव्यं स्वीकरोमि ।

**सोमदत्तः** : भो भिक्षो, कियन्मुद्रकं तव भिक्षणम् ।

---

**सोमदत्त** : (प्रवेश करके और भिखारी को देखकर) हे भिखारी, तुम्हारा गाना अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण है । लेकिन, लिवास से तुम गरीब नहीं मालूम पड़ते हो फिर भी भिक्षा क्यों मांगते हो ?

**भिखारी** : अरे गुणग्राही, निश्चय ही भोले-भाले हो ।

**सोमदत्त** : ऐसा क्यों कहते हो ?

**भिखारी** : क्या आपने सुना नहीं कि समुद्रमन्थन के समय में पीला वस्त्र पहने हुए (दुल्हा बने हुए) विष्णु ने लक्ष्मी को प्राप्त किया और दिगम्बर (नंगे वदन) महादेव को विष ही मिला ।

**सोमदत्त** : ठीक सोचा तुमने । जब कपड़ा ऐसा कीमती है तो भिक्षा भी विशिष्ट ही होगी ।

**भिखारी** : हाँ, जो कुछ भी नहीं लेता हूँ, किन्तु ग्रहण करने योग्य पैसा ही स्वीकार करता हूँ ।

**सोमदत्त** : ओ भिखारी, कितने पैसे की भिक्षा होती है तुम्हारी ?

भिक्षुः : रूप्यकद्वयं गृह्णामि। ततो न्यूनतरग्रहणे कम्पते मे मनोबलम्।

सोमदत्तः : यथा तव मनोबलं न कम्पतामित्येतद् उर्णोत्तरीयं स्वीकृत्यानुगृहाण माम्। (निजमुत्तरीयकं ददाति)

भिक्षुः : तवाभिलाषश्चेद् गृह्णाम्येतत्। सिद्धिस्त्वामनुगच्छतु। अहमपि व्रजामि (स निर्गच्छति)

श्यामा : (प्रविश्य) किमिदं सोमदत्त, तव पार्श्वे एकमेवोर्णोत्तरीयमासीत्। तदपि त्वया भिक्षुकाय दत्तम्।

सोमदत्तः : भिक्षुकः शीतार्त्त आसीत्। मम कार्यन्तु यथा तथा चलिष्यत्येव।

श्यामा : सोमदत्त, तवौदार्यं विद्यते बहु विलक्षणम्। मानवानाम्प्रवृत्तिरपि अचिन्तनीयैव कृता ब्रह्मणा।

---

भिक्षु : दो रुपये लेता हूँ। उससे कम लेने में मेरा मनोबल डोल जाता है।

सोमदत्त : जिससे तुम्हारा मनोबल न डोले इसलिये इस ऊनी चादर को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करो।

(अपनी ऊनी चादर देता है)

भिक्षु : तुम्हारी इच्छा है तो इसे ले लेता हूँ। सफलता तुम्हें प्राप्त हो। मैं भी जाता हूँ। (वह निकल जाता है)

श्यामा : (प्रवेश कर) यह क्या सोमदत्त, तुम्हारे पास एक ही ऊनी चादर थी। उसे भी तुमने भिखारी को दे दिया।

सोमदत्त : भिखारी जाड़ा से दुःखी था। मेरा काम तो जैसे-तैसे चल ही जायेगा।

श्यामा : सोमदत्त, तुम्हारी उदारता, अत्यन्त विचित्र है। ब्रह्मा ने मनुष्य की प्रवृत्ति भी अचिन्तनीय ही बनायी है।

**यषां वसूनि विपुलानि सदा कुमार्गे**
**नश्यन्ति ते न दधतेऽभिरूचिम्प्रदाने।**
**दीनाय किन्तु धनहीनजनान् वदान्यान्**
**कुर्वन् किमाचरति चित्रमिदं विधाता ॥१॥**

---

**येषां वसूनीति** (अन्वयः) : येषां विपुलानि वसूनि सदा कुमार्गे नश्यन्ति ते दीनाय प्रदाने अभिरुचिं न दधते किन्तु धनहीनजनान् विधाता वदान्यान् कुर्वन् किमिदं विचित्रम् आचरति ?

**व्याख्या** : येषां शठानां दुर्वृत्तजनानां विपुलानि प्रचुराणि वसूनि धनानि ('द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु' इत्यमरः) सदा सततं कुमार्गे द्यूतमदिरादिदुर्व्यसनेषु नश्यन्ति व्ययीभवन्ति ते शठाः दीनाय निर्धनजनाय प्रदाने धनदाने लोकानामुपकारे वा अभिरूचिम् प्रवृत्ति न दधते न धारयन्ति। दाने परोपकारे वा प्रवृत्ताः न भवन्ति। परन्तु धनहीनजनान् धनेन रहितान् मनुष्यान् विधाता विधिः ('स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः' इत्यमरः) वदान्यान् बहुप्रदान् दानशील न् वा ('स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे' इत्यमरः) कुर्वन् विदधत् रचयन् वा किमिदं चित्रम् विचित्रम् आश्चर्यं वा आचरति व्यवहरति।

**सारांश** : येषां कृपणानां दुराचारिणां वा बहूनि धनानि द्यूतमधुपानादिषु व्ययीभवन्ति ते कृपणाः लोकोपकारे दीनजनाय वा दाने रूचिं न प्रदर्शयन्ति किन्तु दीनजनान् ब्रह्मा दानशीलान् करोतीति विचित्रमेव तथ्यम्प्रतिभाति।

अत्र विषमालंकारः। छन्दश्च वसन्ततिलकम्। तल्लक्षणमेवम्-ज्ञेयं वसन्त-तिलकं तभजा जगौ गः।

---

जिनके काफी धन हमेशा बुरे मार्गों में नष्ट होते हैं वे गरीब को दान देने में रूचि नहीं रखते हैं, किन्तु धनहीन (गरीब) लोगों को अत्यन्त दानी बनाते हुए विधाता क्या यह विचित्र आचरण करता है।

सोमदत्तः : त्यज्यतामिदम् । कथय कुत्र प्रस्थितासि ?

श्यामा : त्वामद्य चिरादन्विष्यामि ।

सोमदत्तः : किमर्थमिदं कष्टं कृतम् ?

श्यामा : परश्वः मे जन्मदिवसोत्सवो भविष्यति । तदवसरे त्वां निमन्त्रयितुमिच्छामि किन्तु...... ।

सोमदत्तः : कथम् अर्द्धमेवोक्त्वा तूष्णीं गता ?

श्यामा : त्वं ब्राह्मणोऽसि । वेदपाठिनः मालाचन्दनधारिणो विप्रस्य कुले जातोऽसि । अहं चर्मकारपुत्री त्वां कथमामन्त्रयामीति सङ्कुचिताऽस्मि ।

सोमदत्तः : नैवं वाच्यम् । आधुनिके युगे को ब्राह्मणः को वा चर्मकारः । तयोर्वा को भेदः ?

श्यामा : किमिदं कथयसि सोमदत्त ?

---

सोमदत्त : छोड़ो यह । कहो, कहाँ चली हो ?

श्यामा : आज तुम्हें देर से खोज रही हूँ ।

सोमदत्त : किसलिये यह कष्ट किया ?

श्यामा : परसो मेरे जन्मदिन का समारोह होगा । उस अवसर पर तुम्हें निमन्त्रण देना चाहती हूँ । किन्तु......

सोमदत्त : क्यों आधा बोलकर ही चुप हो गयी ?

श्यामा : तुम ब्राह्मण हो । वेद पढ़ने वाले और माला चन्दन धारण करने वाले विद्वान् के कुल में उत्पन्न हुए हो । मैं चमार की बेटी तुम्हें कैसे निमन्त्रण दूं, इसलिये संकोच करती हूँ ।

सोमदत्त : ऐसा नहीं बोलना चाहिये । आज के जमाने में कौन ब्राह्मण है या कौन चमार । उन दोनों में अथवा भेद क्या है !

श्यामा : यह क्या कहते हो, सोमदत्त !

सोमदत्तः : श्रृणु, कियन्तो ब्राह्मणाः सम्प्रति वेदाध्ययनं कुर्वन्ति तथा सन्ध्यावन्दनादिकं विधिपूर्वकमाचरन्ति, गायन्त्री-मन्त्रञ्च जपन्ति जानन्त्येव वा ? पुनश्च कियन्तश्चर्मकाराश्चर्मकार्यमेव सम्पादयन्ति ?

श्यामा : किन्तु समाजे निरक्षरोऽपि ब्राह्मणो भवति पूज्यो नमस्करणीयश्च ।

सोमदत्तः : गतः स समयः ।

श्यामा : कथमेतत् ?

सोमदत्तः : श्यामे, न त्वयान्यथा परिभाव्यम् । किन्तु पश्य, तव गृहे यानि सौख्यसाधनानि सन्ति तानि दृष्ट्वा कस्य चेतो न विक्रियते । कोऽपि ब्राह्मणः तव पितुः पार्श्वे गमने गौरवमनुभवति, किन्तु द्विजकुले समुत्पन्नं मां कः पृच्छति ?

---

सोमदत्त : सुनो, आजकल कितने ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करते हैं, और नियमपूर्वक सन्ध्यावन्दन आदि करते है और गायत्री मन्त्र का जप करते हैं या गायत्री जानते ही है ? फिर कितने चमार हैं जो चमड़े का ही कांम करते हैं ?

श्यामा : किन्तु समाज में मूर्ख ब्राह्मण भी पूजा जाता है और प्रणाम के योग्य होता है ।

सोमदत्त : वह समय चला गया ।

श्यामा : यह कैसे ?

सोमदत्त : श्यामे, तुम अन्यथा मत मानो । लेकिन देखो, तुम्हारे घर में जो सुख-साधन हैं उन्हें देखकर किसका चित्त चञ्चल नहीं होता है । कोई ब्राह्मण तुम्हारे पिता के पास जाने में गौरव अनुभव करता है । किन्तु ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मुझको कौन पूछता है ?

श्यामा : एतत्कृते कः खलु दोष भाग् भवति ?

सोमदत्तः : भाग्यवादिनाम्मते विधातैव ।

श्यामा : विधातुः कृते तु सर्वे समाना विद्यन्ते ।

सोमदत्तः : धनवितरणे वैषम्ये विधातुरज्ञानमेव कारणम् ।

श्यामा : कथमिदं सम्भाव्यते ?

सोमदत्तः : किं नैवं त्वमवलोकयसि--

**अधीत्यापि शास्त्राणि दीना भवन्ति**
**जनास्तस्करा वायुयानेन यान्ति ।**
**अरे रै महत्त्वं क्व वेत्त्यब्जयोनि-**
**र्धनावण्टने वै स बालो विधाता ।। २ ।।**

---

**अधीत्यापीति** (अन्वयः)—शास्त्राणि अधीत्यापि जनाः दीनाः भवन्ति । तस्करा जनाः वायुयानेन यान्ति । अरे, रै- महत्वम् अब्जयोनिःक्व वेत्ति (तेन) धनावण्टने स विधाता बालो वै (विद्यते) ।

**व्याख्या**—शास्त्राणि-छन्दःशिक्षा कल्पव्याकरण-ज्योतिषनिरुक्तानि इमानि षडङ्गानि अधीत्य सम्यक् पठित्वा अपि जनाः मनुष्याः दीनाः धनहीनाः भवन्ति अपरत्र तस्कराः चौराः जनाः वायुयानेन यान्ति भ्रमन्ति धनानां बाहुल्यात् । अरे इति सम्बोधने, अर्थात् हे मानवाः, रैमहत्त्वम् —रायः धनस्य अर्थस्यवा ('हिरण्यं द्रविणं द्युम्नमर्थ रै विभवा अपि' इत्यमरः) लोके महत्तां भूमिकां वा

---

श्यामा : इसके लिये कौन दोषी है ?

सोमदत्त : भाग्यवादियों के मत में विधाता ही (दोषी है) ।

श्यामा : विधाता के लिये तो सभी समान हैं ।

सोमदत्त : धन के बटवारा में असमानता करने में विधाता का अज्ञान ही कारण है ।

श्यामा : यह भला कैसे सम्भव है ?

सोमदत्त : क्या तुम ऐसा नहीं देखती हो ?

श्यामा : जनानां सामाजिक-मान्यता-विषये तव किमभिमतम् ?
सोमदत्तः : का नाम सामाजिक-मान्यता साम्प्रतम् ?
श्यामा : सम्प्रत्यपि वर्ण-व्यवस्थां जाति-व्यवस्थाञ्च जना पोषयन्त्येव ।

---

अब्जयोनिः अप्सु जलेषु जायते इत्यब्जम् कमलं तद् योनिः जन्मस्थानं यस्य स विधिः ('धाताब्जयोनिद्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः 'इत्यमरः,) क्व वेत्ति किं जानाति । जलीयो जीवः धनस्य महत्त्वं कथं जनायादिति तात्पर्यम् । अतः धनस्य आवण्टने वितरणे स विधाता ब्रह्मा वै नूनं बालः अल्पज्ञ एव विद्यते ।

**सारांश**—शास्त्रपारङ्गता अपि जनाः दरिद्रा दृश्यन्ते दुष्कर्मलिप्ताश्चौराः विपुलधनप्रभावात् सदा वायुयानेन पर्यटन्ति । कमलादुत्पन्नः ब्रह्मा धनस्य महत्त्वं न विचारयतितेन धनवितरणे स निश्चयमेवाल्पज्ञः अनुभवहीनश्च विद्यते ।

पद्ये 'रे रै' इत्यत्र यमकालङ्कारः । छन्दश्च वसन्ततिलकम् ।

---

शास्त्रों का अध्ययन करके भी लोग गरीब होते हैं (और) निन्दनीय कर्म करने वाले तस्कर हवाई जहाज से घूमते रहते हैं। अरे, कमल से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मा धन के महत्त्व को भला कहाँ जानता है। निश्चय ही धन वितरण के मामले में विधाता बालक (अनुभवहीन) है।

श्यामा : लोगों की सामाजिक मान्यता के विषय में तुम्हारी क्या धारणा है।
सोमदत्त : अब सामाजिक मान्यता किसका नाम है ?
श्यामा : अब भी लोग वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था का पोषण करते ही हैं।

सोमदत्तः : तेषां जनानां न केवलं सिद्धान्तः परञ्च व्यवहारोऽपि समीक्ष्यः। ते दीनान् याचकान् ब्राह्मणान् तर्जयन्ति किन्तु दारोगापदारूढं श्वपचमपि प्रत्यहं नमस्कुर्वन्ति। किं बहुना, अग्रे अग्रे चाटुकारितावचनञ्चोद्गिरन्ति।

श्यामा : त्वं साम्यवादी जन इवाभि भाषसे।

सोमदत्तः : नाहं साम्यवादी न वा सामन्तवादी किन्तु यथार्थवादी नूनमेवास्मि। श्यामे, त्वमेव कथय, मत्कथने किमप्य-नुचितं विद्यते ?

श्यामा : नानुचितं किन्तु प्रगतिशीलं विचारं ब्रूषे।

सोमदत्तः : श्यामे, नाहं केवलं ब्रूवे, किन्तु काले तथा कुर्वेऽपि। यतः

**सिद्धान्तघोषं कुरूते सदा यो नाचारशिष्टस्तु कदापि दृष्टः।**
**नामुत्र कीर्तिं लभते च लोके परस्य दारेषु यथाभिगामी।**

---

सोमदत्त : उनलोगों का न केवल सिद्धान्त किन्तु व्यवहार भी देखा जाना चाहिये। वे गरीब और मांगने वाले ब्राह्मणों को डाँटते हैं, लेकिन दारोगा पद पर आसीन डोम को भी प्रतिदिन प्रणाम करते हैं। वहुत क्या कहना है ? आगे-आगे खुशामदी बातें बोलते हैं।

श्यामा : तुम साम्यवादी व्यक्ति की तरह भाषण करते हो।

सोमदत्त : न तो मैं साम्यवादी हूँ और न सामन्तवादी, परन्तु यथार्थवादी जरूर हूँ। श्यामे, तुम्ही वताओ, मेरे कथन में कोई अनुचित बात है क्या ?

शयमा : अनुचित नहीं, किन्तु प्रगतिशील विचार बोलते हो।

सोमदत्त : श्यामे, मैं केवल बोलता नहीं हूँ, किन्तु समय आने पर वैसा करता भी हूँ, क्योंकि।

श्यामा : साधु, सोमदत्त, त्वया समं वार्तालापे न लक्षिता समस्य गतिः। इदानीम्प्राप्तः प्रदोषकालः। तेन तमधिकृत्य श्रावय किमपि।

सोमदत्तः : श्यामे, नाहं कविः, किन्तु तवानुरोधश्चेद् श्रूयताम्—

**काले सहस्रकिरणे नभसः प्रयाते**
**उद्यन्ति भानि शनकैरभृशद्युतीनि।**
**राष्ट्रे पृथौ शिथिलितप्रथमप्रभावे**
**केन्द्रे यथा विपुलसम्प्रभुशासनानि ॥ ४ ॥**

---

सिद्धान्तघोषमिति (अन्वयः)—यः सदा सिद्धान्तघोषं कुरुते तु कदापि आचारशिष्टो न दृष्टः (स) लोके परत्र च कीर्तिं न लभते यथा परस्य दारेषु गामी (न लभते)।

व्याख्या—यो जनः सदा सततं सिद्धान्तस्य आदर्शवाक्यस्य घोषं भाषणं कुरुते करोति किन्तु कदापि आचारशिष्टः आचारे शिष्टः शिक्षितो विनम्रो वा न दृष्टः विलोकितः अर्थात् वचनानुकूलं व्यवहारं न करोति। स जनो लोके संसारे समाजे वा अमुत्र परलोके अपरस्मिन् जन्मनि च कीर्तिं यशः न लभते प्राप्नोति यथा परस्य अन्यस्य पुरुषस्य दोरषु स्त्रीषु अभिगामी मैथुनेच्छया गमनशीलो जनो नास्मिन् लोके प्रतिष्ठामधिगच्छति न च स्वर्गे अपरस्मिन् जन्मनि वा यशः प्राप्नोति।

---

जो (व्यक्ति) हमेशा सिद्धान्त का बखान करता है, किन्तु आचारवान् कभी नहीं देखा जाता है वह लोक और परलोक में उसी तरह प्रतिष्ठा नहीं पाता है जैसे दूसरे की स्त्रियों में गमन करने वाला प्रतिष्ठित नहीं होता है।

**श्यामा** : अच्छा सोमदत्त, तुम्हारे साथ बात-चीत में समय बीतने का कुछ पता ही नहीं चला। अब तो सन्ध्या हो गयी। इसलिये उस (सन्ध्या) पर ही कुछ सुनाओ।

**सोमदत्त** : श्यामे, मैं कवि नहीं हूँ किन्तु तुम्हारा अनुरोध है तो सुनो—

**सारांश**—यो मनुष्य आदर्शवाक्यस्य उद्घोषं सदा करोति किन्तु आचारस्य पालनं कदापि न करोति स जनो लोके परलोके वा प्रतिष्ठां न प्राप्नोति यथा अन्यस्य पत्नीपार्श्वे मैथुनेच्छया गमनशीलो जनो लोके परलोके च प्रतिष्ठितो न भवति। उक्तमपि 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।'

**अत्रोपमालंकारः**—'सादृश्यमुपमा भदे' इति लक्षणात् छन्दश्चोपजातिरिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मेलनात्।

**काल इति (अन्वयः)**—काले सहस्रकिरणे नभसःप्रयाते अभृशद्युतीनि भानि शनकैः उद्यन्ति यथा पृथौ राष्ट्रे शिथिलितप्रथमप्रभावे केन्द्रे विपुलसम्प्रभुशासनानि (उद्यन्ति)।

**व्याख्या**—काले-सन्ध्याकाले, राष्ट्रस्य विश्रृंखलताकाले वा; सहस्रकिरणे सहस्रं किरणाः अंशवः यस्य स सहस्रकिरणः सूर्यः तस्मिन् न भसः आकाशात् प्रयाते गते प्रदोषकाले वा शनकैः शनैः शनैः अभृशद्युतीनि न भृशम् अभृशम् (नञ्समास) अगाढं द्युतिः कान्तिः ('शो भाकान्तिर्द्युतिश्छविः' इत्यमरः) यस्य तानि भानि-नक्षत्राणि शुक्रादीनि उद्यन्ति उदयं लभन्ते यथा पृथौ विशाले राष्ट्रे देशे शिथिलित प्रथमप्रभावे शिथिलितः विश्रान्तः प्रथमः पूर्वकालीनः प्रभावः सामर्थ्यं यस्य तस्मिन् अर्थात् क्षीणशक्तौ केन्द्रे भूते विपुलानि सम्प्रभुशासनानि स्वतन्त्राणि राज्यानि उद्यन्ति उदितानि भवन्ति।

**सारांश**—सन्ध्याकाले आकाशात् प्रकाशपुञ्जे सूर्ये प्रस्थिते अल्पतेजांसि शुक्रादीनि नक्षत्राणि शनैः शनैः उदितानि भवन्ति यथा विशाले देशे केन्द्रे क्षीणशक्तौ जाते बहूनि स्वतन्त्रराज्यानि सत्तायाम् आगच्छन्ति।

**अत्रोपमालंकार**। छन्दश्च बसन्ततिलकम्।

---

सन्ध्या समय (पक्ष मे-विश्रृंखलित अवस्था) में आकाश से सूर्य के अस्त हो जाने पर अल्प प्रकाश वाले नक्षत्र (शुक्र आदि) धीरे-धीरे उगने लगे हैं। जैसे विशाल देश में केन्द्र के पूर्वकालीन प्रभाव कम होने पर बहुत सारे स्वतन्त्र राज्य सत्ता में आने लगते हैं।

श्यामा : साधु गीतम्। यथा हृद्यो भावस्तथैव लयः। सौमदत्त, त्वमुत्कृष्टं काव्यं रचयसि तेन परश्वः गीतं त्वया श्रावणीयम् भविष्यति नूनम्।

सोमदत्तः : भवेद् गीतं नूनं, किन्तु मोदकं नहि न्यूनम्।

श्यामा : आगमनीयं तूर्णम् भक्ष्यं नैव चूर्णम्।

सोमदत्तः : श्यामे, त्वमपि कवित्वं गता।

श्यामा : नहि कदापि। अहन्तु गृहं चलिता।

सोमदत्तः : अस्तु, नमस्तुभ्यं पुनर्दर्शनाय।

श्यामा : अभिवादनन्ते पुनरागमनाय।

(उभौ प्रस्थितौ)

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

---

श्यामा : बहुत अच्छा। जैसा हृदयहारी भाव है वैसा ही लय है। सोमदत्त तुम श्रेष्ठ काव्य की रचना करते हो। इसलिये कल तुम्हें गीत जरूर सुनाना होगा।

सोमदत्त : गीत जरूर हो, किन्तु मिठाई कम नहीं हो।

श्यामा : जल्दी ही आना, किन्तु चूर्ण (पाचक) नहीं खाना।

सोमदत्त : तुम भी कविता करने लगी।

श्यामा : कभी नहीं। मैं तो घर चली।

सोमदत्त : अच्छा तुम्हें नमस्कार है। फिर दर्शन देना।

श्यामा : तुझे अभिवादन है। फिर लौटकर आना।

( दोनों प्रस्थान करते हैं )

॥ चौथा अङ्क समाप्त ॥

## पञ्चमोऽङ्कः

(श्यामा पुस्तकालये पुस्तकं पठति। किञ्चित्कालानन्तरं सा किमपि विचिन्त्य चित्रं लेखितुमारभते। तदानीमेव समागच्छति सुनयना)

सुनयना : सख्यै नमः।
श्यामा : तुभ्यं नमः। आलि, स्वागतन्ते, आगच्छ, अत्रोपविश।
सुनयना : (उपविश्य) कथय कीदृशस्तेऽध्ययनक्रमः।
श्यामा : अध्ययनन्तु चलति, किन्तु तत्कृते समय एव न मिलति।
सुनयना : कथम् ? अध्ययनं छात्राणां प्रथमः कल्पो विद्यते।
श्यामा : तत्र कः सन्देहः, किन्तु समया भाव एव बाधते।
सुनयना : समयस्तु सकलाः कलाः।
श्यामा : सुनयने, नासि त्वं सांसारिको जनः।

---

## पञ्चम अंक

(श्यामा पुस्तकालय में किताब पढ़ती है। कुछ देर बाद वह कुछ सोचकर चित्र लिखना शुरू करती है। तभी सुनयना आती है)

सुनयना : (प्रवेश कर) सखी को नमस्कार।
श्यामा : नमस्कार तुझे। सखि, तुम्हारा स्वागत है, आओ यहाँ बैठो।
सुनयना : (बैठकर) कहो, तुम्हारा अध्ययन कैसा चलता है ?
श्यामा : अध्ययन तो चलता है, किन्तु उसके लिए समय ही नहीं मिलता है।
सुनयना : क्यों अध्ययन तो छात्रों का प्रथम कार्य है।
श्यामा : उसमें क्या सन्देह है ? किन्तु समय की कमी से बाधा होती है।
सुनयना : समय तो सभी क्षण है।
श्यामा : सुनयने, तुम सांसारिक व्यक्ति नहीं हो।

सुनयना : कथमेतत् ?

श्यामा : अहोरात्रस्तु चतुर्विंशहोरात्मक एव भवति ।

सुनयना : इदन्तु तथ्यं किन्तु कथं नाभिप्रायं स्फुटं भणसि ?

श्यामा : आकर्णय सम्प्रति विस्तरेण ।

सुनयना : श्रावय दिनचर्यामेव ।

श्यामा : पश्य, प्रातरुत्थाय चायं गृह्णामि समाचारपत्राणि च पठामि । ततः स्नानादेरनन्तरं स्वल्पाहारं गृहीत्वा महाविद्यालयं यामि । तत आगत्य भोजनं कृत्वा शयनं करोमि ।

सुनयना : ततस्तः ।

श्यामा : सुप्तोत्थिताहं गृहमागताभिः सखीभिः वार्ताक्रीडादिकं कृत्वा हट्टं यामि । ततो निवृत्य चलचित्रादिपत्रिकाभिश्चित्रहारेण चलचित्रेण च श्रान्तिमपनयामि । ततः शय्यायां व्रजामि ।

---

सुनयना : यह कैसे ?

श्यामा : दिन रात तो चौबीस घण्टे का ही होता है ।

सुनयना : यह तो ठीक है, किन्तु अपना आशय साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो ।

श्यामा : अब सुनो विस्तार से ।

सुनयना : अपनी दिनचर्या ही सुनाओ ।

श्यामा : देखो, सुबह उठकर चाय पीती हूँ तथा समाचार पत्रों को पढ़ती हूँ । उसके बाद स्नान आदि के पश्चात् जलपान कर महाविद्यालय जाती हूँ । वहाँ से आकर भोजन करके सोती हूँ ।

सुनयना : उसके बाद ।

श्यामा : सोकर उठती हूँ और घर आयी सखियों के साथ बातचीत एवं खेल आदि के बाद बाजार जाती हूँ । वहाँ से लौटकर सिनेमा

**सुनयना** : अहर्निशं महती व्यस्तता भवति ।

**श्यामा** : सखि, त्वमेव मामुपदिश कदा पठनकार्यं करवाणि ।

**सुनयना** : सत्यम् । नेयं समस्या त्वदीया केवलं किन्तु सम्पूर्णच्छात्र समुदायस्य कृते दुःसाध्या विद्यते ।

**श्यामा** : तर्हि, एतत्कृते किमपि करणीयं भविष्यति ।

**सुनयना** : भगवन्तं भूतभावनं प्रार्थयिष्येऽहोरात्रे होराणां संख्या-वर्धनाय ।

**श्यामा** : सुनयने त्वं परिहासं करोषि ।

**सुयनना** : त्यक्त्वा रोषं कथय किं लिखन्ती आसीः ।

**श्यामा** : किमपि चित्रं निर्माय मनोविनोदयामि स्म ।

**सुनयना** : चित्रामिदं तव काम्यजनस्य चेदहमपि द्रक्ष्यामि कीदृशो रमणीयः सः ?

---

आदि पत्रिकाओं से, चित्रहार से और सिनेमा से थकावट मिटाती हूँ । उसके बांद बिछावन पर जाती हूँ ।

**सुनयना** : दिन-रात बहुत व्यस्तता रहती है ।

**श्यामा** : सखि, तुम्हीं बताओ मुझे कब मैं पढ़ूँ ?

**सुनयना** : ठीक है । यह समस्या केवल तुम्हारी नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण छात्र-समुदाय के लिए दुःसाध्य है ।

**श्यामा** : तब तो उसके लिए कुछ करना होगा ।

**सुनयना** : भगवान् भूत भावन से प्रार्थना करूँगी दिन-रात में घण्टाओं की संख्या बढ़ाने के लिए ।

**श्यामा** : सुनयने, तुम मजाक कर रही हो ।

**सुनयना** : क्रोध छोड़कर बताओ कि क्या लिख रही थी ?

**श्यामा** : कुछ चित्र बनाकर मनोरञ्जन कर रही थी ?

**सुनयना** : यह चित्र यदि तुम्हारे प्रिय का है तो मैं भी देखूँगी वह कितना सुन्दर है ।

श्यामा : गृहाणैतद् सुखं समीक्षस्व। (चित्रं ददाति)

सुनयना : (चित्रं दृष्ट्वा) अस्याकृतिः नूनमेव मनोज्ञा।

श्यामा : एतत्कृते धन्यवादः।

सुनयना : श्यामे, सखीभावात् किमपि प्रष्टुमिच्छामि।

श्यामा : तत्र का विचिकित्सा सुखं पृच्छ।

सुनयना : साधु। सत्यं ब्रूहि-किं त्वमेवेमं जनमभिलषसि आहोस्वित् सोऽपि त्वां हृदयेन कामयते।

श्यामा : नाहं सम्यग्वक्तुं पारयामि, किन्तु यथा चिन्तयामि नैका ताली शब्दं करोति। पुनश्च,

**शुभ्रांशुनाधिलभते सुषमां त्रियामा**
**रात्रिं विना हरति नैव मनो मृगाङ्कः।**
**युग्मं निमज्जति हि कामधुनीतरङ्गे**
**भीमात्मजाभिलषितो वृतवान्नलस्ताम्॥ १॥**

---

शुभ्रांशुनेति (अन्वयः) : त्रियामा शुभ्रांशुना सुषमाम् अधिलभते मृगाङ्कः रात्रिं विना मनः नैव हरति। कामधुनीतरङ्गे हि युग्मं निमज्जति भीमात्मजाभिलषितः नलः तां वृतवान्।

---

श्यामा : लो इसे अच्छी तरह देख लो (चित्र देती है)

सुनयना : (चित्र देखकर) उसकी आकृति मनोहर है।

श्यामा : इसके लिये धन्यवाद।

सुनयना : श्यामे, सखी भाव के कारण कुछ पूछना चाहती हूँ।

श्यामा : इसमें हिचकिचाहट क्या है ? आराम से पूछो।

सुनयना : ठीक है, सच्चाई बताना। क्या तू ही इस जन को चाहती है या वह भी तुम्हे हृदय से चाहता है।

श्यामा : मैं ठीक से तो बता नहीं सकती, किन्तु जैसा सोचती हूँ एक हाथ से ताली नहीं बजती है। और फिर,

**सुनयना** : सत्यमेवोक्तं त्वया, किन्तु किमयं जनस्तव स्वजातीयः ?
**श्यामा** : नहि विजातीयः ।

---

**व्याख्या** : त्रियामा रात्रिः ('निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः । शुभ्रांशुना शुभ्राः धवलाः अंशवः किरणाः यस्य स निशापतिश्चन्द्रः ('विधुः सधांशुः शुभ्रांशुरोषधीशो निशापतिः' इत्यमरः) तेन चन्द्रेण सुषमाम्-शोभाम् परमाम् ('सुषमा परमा शोभा' इत्यमरः) अधिलभते आधिक्येन प्राप्नोति । मृगाङ्कः मृगः अङ्के यस्य स चन्द्रमाः रात्रिं बिना दिवसे वा मनः चित्तं नैव हरति आकर्षति । हि यतः कामधुनीतरङ्गे काम एव धुनी नदी इति काकधुनी तस्याः तरङ्गे भङ्गे ('भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः' इत्यमरः) युग्मं कामियुगलं निमज्जति-आनन्देनावगाहनं कुरुते । भीमात्मजाभिलषितः—भीमः कुण्डिनपुरीनरेशः तस्यात्मजा पुत्री दमयन्ती तयाभिलषितः ईप्सितः नलः निषधाधिपतिः तां दमयन्तीं वृतवान् अवृणोत् ।

**सारांश** : निशाया उत्कृष्टा शोभा निशाकरेण भवति । निशाकरश्चन्द्रोऽपि रात्रिं विना चितं न प्रसादयति किन्तु तयोः शोभा परस्परमन्योन्येन वर्धते । यतः कामनदीतरङ्गे प्रेमियुगलं स्वैरमवगाहते एकाकी कश्चिन्न रमते । यथा दमयन्ती नलमभिलषितवती तदा नलोऽपि ताम्प्रत्याकृष्टः तां वृतवानेव नोपेक्षितवान् ।

अत्रालङ्कारः दृष्टान्तः । तल्लक्षणमेवम्—'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्' । वृत्तमत्र वसन्ततिलकम् ।

---

रात चन्द्रमा से अधिक शोभती है और चन्द्रमा भी रात के बिना मन को मोहता नहीं है । कामसरिता की लहरों में कामी और कामिनी का जोड़ा ही डुबकी लगाता है । दमयन्ती के द्वारा चाहे गये नल ने उस (दमयन्ती) का वरण किया ।

**सुनयना** : तुमने ठीक ही कहा, किन्तु क्या यह व्यक्ति तुम्हारी जाति का है ।

**श्यामा** : नहीं, वह दूसरी जाति का है ।

सुनयना : किन्ते पितरावनुमंस्येते एवम्विधं प्रणयं परिणयञ्च ?
श्यामा : अत्राहमपि शङ्के ।
सुनयना : तर्हि किं करिष्यसि ?
श्यामा : सखि, नाहमत्रैमि किञ्चित् । त्वमेव तावत् परिचिन्तय ।
सुनयना : श्यामे, किम्पित्रोः कोपं सोढुमर्हसि ?
श्यामा : (किमपि विचिन्त्य) सखि, मम स्थाने यदि त्वं स्याः किं कुर्याः ?
सुनयना : श्यामे, ममात्मनि प्रविश्य त्वया प्रश्नः कृतः ।
श्यामा : आलि, किं त्वमपि अहमिव प्रीतिरोगग्रस्तासि ?
सुनयना : (अधोमुखी भूत्वा) प्रतीयते किमपि तथैव ।
श्यामा : (विहस्य) साधु, स्वास्थ्यं लभस्व । कथय, कस्ते काम्यो युवा धन्यः ?
सुनयना : अस्ति मद्वर्गेऽधीयानो जनः कान्तिरामः ।

---

सुनयना : क्या तुम्हारे माता-पिता इस प्रकार के प्रेम और विवाह की अनुमति देंगे ?
श्यामा : इसमें मुझे भी शंका है ।
सुनयना : तब क्या करोगी ?
श्यामा : सखि, मैं कुछ समझ नहीं पाती हूँ । तब तक तुम्हीं कुछ सोचो ।
सुनयना : श्यामे, क्या माता-पिता के क्रोध को सह सकती हो ?
श्यामा : (कुछ सोचकर) सखि, मेरी जगह तुम होती तो क्या करती ?
सुनयना : श्यामे, तुमने मेरे भीतर पैठकर प्रश्न कर दिया ।
श्यामा : सखि, क्या तुम भी मेरी तरह प्रेमरोग से ग्रस्त हो ?
सुनयता : (मुँह नीचे करके) कुछ वैसा ही लगता है ।
श्यामा : (हँसकर) अच्छी बात है । बढ़िया स्वास्थ्य बनाओ । कहो, तुम्हारा अभिलषित धन्य युवक कौन है ?
सुनयना : वह व्यक्ति है—मेरे वर्ग में पढ़ने वाला कान्ति राम ।

**श्यामा** : सखि, किमिदं सत्यम् ?

**सुनयना** : आलि, सत्यमेव, परं त्वं विस्मिता कथम भूः ।

**श्यामा** : सुनयने किं त्वं वेत्सि ? स कान्तिरामः श्वपचजातीयो विद्यते ।

**सुनयना** : जानामि सखि जानामि । इदानीं नियोजने आरक्षणोद्घोषिते जनानां जातिः ज्ञातव्या भवति ।

**श्यामा** : तर्हि आरक्षणस्य नीतेरुद्घोषेण महदुपकृतं जनानाम् ।

**सुनयना** : तत्र कः सन्देह ? नियोजनं भवतु वा न भवतु किन्तु जातेश्चर्चा जायत एव ।

**श्यामा** : किमियं चर्चा नूतना ?

**सुनयना** : प्रायशस्तथैव । जनास्तु स्वाधीने भारते विस्मृतवन्तः आसन् यत्तेषां प्रतिवेशी उपवेशी वा जनः कस्याः जातेः विद्यते । यतः भोजनालये सम्मेलने निवासे यात्रायां वा न कोऽपि कमपि जातिं जिज्ञासते स्म ।

---

**श्यामा** : सखि, क्या यह सत्य है ?

**सुनयना** : सखि, सत्य ही है, किन्तु तुम आश्चर्यचकित क्यों हो गयी ?

**श्यामा** : सुनयने, क्या तुम जानती हो ? वह कान्तिराम चाण्डाल जाति का है ।

**सुनयना** : जानती हूँ, सखि, जानती हूँ । इस समय नौकरी में आरक्षण की घोषणा होने पर लोगों की जाति जाननी पड़ती है ।

**श्यामा** : तब तो आरक्षण नीति की घोषणा ने लोगों का बड़ा उपकार किया ।

**सुनयना** : इसमें क्या सन्देह । नौकरी हो या न हो, लेकिन जाति की चर्चा तो होती ही है ।

**श्यामा** : क्या यह चर्चा नयी है ?

**सुनयना** : प्रायः वैसा ही । लोग तो स्वतन्त्र भारत में भूल गये थे कि उनके पड़ोस में रहने वाला या पास में बैठने वाला व्यक्ति किस जाति

श्यामा : किमधुना सर्वत्र जातेः ज्ञानमावश्यकम् ?

सुनयना : नूनमेवैषा सूचना सम्प्रत्यावश्यकी। अन्यथा स्वैरं समालापोऽपि व्यतिकरः।

श्यामा : परन्त्वनेन समाजे विभेदः कटुत्वञ्च वर्धिष्यते।

सुनयना : वर्धतां नाम। तेन किम् भवति ?

श्यामा : राज्यसञ्चालने विधिव्यवस्थायाञ्च महत् काठिन्यं भविष्यति।

सुनयना : त्वं किमपि नावगच्छसि। पूर्वं विभाजनीयम् ततोऽधिशासनीयमिति नीतिः पुरातनी।

श्यामा : किन्तु समाजे विभक्ते देशस्यापि विभाजनस्य भयमुत्पत्स्यते।

सुनयना : त्वमपि सम्प्रत्यादर्शवादिनी जाता। कथय, कस्य चिन्ता देशकल्याणाय। पुनश्च,

---

का है क्योंकि होटल में, सम्मेलन में, रहने या यात्रा में कोई किसी की जाति नहीं जानना चाहता था।

श्यामा : क्या इस समय सब जगह जाति की जानकारी आवश्यक है ?

सुनयना : निश्चय ही यह जानकारी आजकल आवश्यक है। नहीं तो स्वच्छन्दतापूर्वक बातें करना भी संकट है।

श्यामा : लेकिन इससे समाज में भेदभाव और कड़ुआपन बढ़ेगा।

सुनयना : बढ़ता रहे। इससे क्या होता है ?

श्यामा : राज्यसञ्चालन और विधि व्यवस्था में बड़ी कठिनाई होगी।

सुनयना : तुम कुछ भी नहीं समझती हो। पहले (समाज को) बाँटो और तब शासन करो—यह तो पुरानी नीति है।

श्यामा : किन्तु समाज के बँट जाने पर देश के भी विभाजन का भय होने लगेगा।

सुनयना : तुम भी आजकल आदर्शवादिनी हो गयी हो कहो किसको चिन्ता है, देश के कल्याण के लिये ? और फिर,

राष्ट्रस्य मङ्गलधिया पटुतस्करः को-
ऽभीक्ष्णं करोति गमनागमनं विदेशे।
निर्वाचने च बहुलद्रविणव्ययेऽपि
लक्ष्यं कुतः जनहितं मतयाचकानाम् ॥२॥

**श्यामा** : अलमेतेन विवादेन। विचारणीयं तथ्यमेव विस्मृतं विषयान्तरगमनेन।

**सुनयना** : सत्यं स्मारितास्मि। आवयोः स्थितिः किमपि साम्यं वैषम्यञ्च विभर्ति।

---

**राष्ट्रस्येति** (अन्वयः)—कः पटुतस्करः राष्ट्रस्य मङ्गलधिया विदेशे अभीक्ष्णं गमनागमनं करोति? निर्वाचने बहुलद्रविणव्ययेऽपि मतयाचकानां लक्ष्यं जनहितं कुतः भवति?

**व्याख्या**—कः पटुतस्करः निपुणः चौरः चौर्येण निषिद्धवस्तुनां व्यापारकर्ता वा राष्ट्रस्य मङ्गलधिया-देशस्य कल्याणबुद्ध्या विदेशे परदेशे अभीक्ष्णं पुनः पुनः ('मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' इत्यमरः) गमनागमनं - गमनञ्च आगमनञ्च करोति विदधाति। निर्वाचने जनमतसंग्रहावसरे बहुलद्रविणव्यये बहुलस्य प्रचुरस्य द्रविणस्य धनस्य व्यये मतयाचकानां विभिन्नदलनेतॄणां निर्वाचनप्रत्याशिनां वा लक्ष्यम् उद्देश्यं जनहितम् अन्येषां जनानां हितं कल्याणं कुतः भवति, न कदापीत्यर्थः।

---

कौन सा चतुर तस्कर है जो देश का कल्याण सोचकर बार-बार विदेश में आना-जाना करता है तथा चुनाव में काफी धन के खर्च में भी मत मांगने वाले (नेताओं) का लक्ष्य जनता का हित कब होता है। अर्थात् कभी नहीं।

**श्यामा** : यह विवाद बेकार है। दूसरे विषय में चले जाने से विचारने योग्य विषय ही भुला गया।

**सुनयना** : तुमने ठीक याद दिलाया। हम दोनों की स्थिति में कुछ समता है और कुछ विषमता है।

श्यामा : एवम्, अत्राहं निम्नजातीया तत्र च ते काम्यो दलितः ।
सुनयना : सम्प्रति जातेः विचारो न प्रतीयते प्रासङ्गिक ।
श्यामा : किं कथ्यताम् । जातिभेदो महान् प्रत्यूहः परिणय-सम्बन्धे ।
सुनयना : सत्यम्, जाति भेदकल्पनेन महती हानिः दरीदृश्यते दुर्लभ मानवदेहे । पश्य,

**वैविध्यपूर्णजगतीह कृते विधात्रा**
**भूयो मनुष्यजननं विदितं वरेण्यम् ।**
**जातिप्रभेदकलहाज्जनवित्तहानं**
**शुद्धं यथा गलति हेम कुचूर्णयोगात् ॥३॥**

---

**सारांश** : निपुणः तस्करः देशस्य कल्याणं मनसि निधाय विदेशे निषिद्ध-वस्तुनां व्यापारार्थं न गच्छति किन्तु देशस्य हानिं विधाय स्वात्मनः लाभाय तथा करोति । एवमेव विभिन्नदलानां नेतारो निर्वाचन-प्रत्याशिनो वा निर्वाचनावसरे नैजं ला भं परिलक्ष्यैव प्रचुरं धनं व्ययीकुर्वन्ति न तु सामान्यजनतानां हिताय तथा कुर्वन्ति ।

**वैविध्यपूर्णजगतीहेति** (अन्वयः)—विधात्रा कृते इह वैविध्यपूर्णजगति मनुष्यजननं भूयः वरेण्यं विदितम् किन्तु जाति प्रभेदकलहात् जनवित्तहानं भूयः (भवति) यथा शुद्धं हेम कुचूर्णयोगात् गलति ।

---

श्यामा : ऐसा ही है । इधर मैं निम्न जाति की कन्या हूँ और उधर तुम्हारा पति दलित है ।
सुनयना : अब तो जाति का विचार प्रासङ्गिक नहीं लगता है ।
श्यामा : क्या कहा जाए । विवाह सम्बन्ध में जातिगत भेद बहुत बड़ी बाधा है ।
सुनयना : ठीक कहती हो, जाति भेद की कल्पना से इस दुर्लभ मनुष्य शरीर में बहुत बड़ी हानि देखी जाती है । देखो,

श्यामा : सखि कथय, जातीय भेदादस्माकं प्रेम अनुचितं किम् ?

सुनयना : नानुचितम्, किन्तु गुरुजनानुमोदितम्प्रेम क्षेमकरम् भवति।

श्यामा : सुनयने, त्वमसि कुलीना कन्या तेन तव परिणेता आत्मानं धन्यं मंस्यते किन्तु सोमदत्तेन समं मदीय: सम्बन्ध: कथमनुमोदितो भविष्यति ?

---

**व्याख्या**—विधात्रा ब्रह्मणा कृते निर्मिते इह अस्मिन् वैविध्यपूर्णजगति विविधानाम् भाव: वैविध्यम् रूपगुणादीनां विविधतया पूर्णे संसारे मनुष्यजननम् मानवरूपे जन्म भूय: बहुलं वरेण्यं प्रमुखं विदितं विख्यातं किन्तु जातिप्रभेद-कलहात् गोपनापितकुम्भकारादिभेदात् तज्जन्यविरोधात् जनवित्तहानं जन-समूहस्य वित्तस्य च हानं हानि: विनाशो वा भवति। यथा शुद्धं विशुद्धं हेम सुवर्णं कुचूर्णयोगात् कुत्सितचूर्णस्य 'सुहागा' इति ख्यातस्य चूर्णस्य संयोगात् गलति विनश्यति।

**तात्पर्यम्**—प्रजापतिना निर्मितेऽस्मिन् रूपगुणादीनां विविधतापूर्णे संसारे मनुष्यशरीरे जन्म नितरां दुर्लभम् प्रोक्तं किन्तु चर्मकारनापितादीनां जातिषु भेदकल्पनात् तज्जन्यविरोधाच्च जनस्य धनस्य च महती क्षति भवति। तेनामूल्यं मनुष्यशरीरं जातिगत विरोधात् तथैव विनश्यति यथा सुहागादिचूर्णेन सह विशुद्धं स्वर्णं गलति। अत्रोपमालंकार:। छन्द: वसन्ततिलकम्।

---

ब्रह्मा के द्वारा निर्मित इस विविधतापूर्ण संसार में मनुष्य जन्म अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है, किन्तु जाति के भेद प्रभेद के कलह के कारण जन और धन की बहुत बड़ी हानि होती है जैसे शुद्ध सोना सुहागा के संयोग से गल जाता है।

श्यामा : सखि कहो, जातिगत भेद के कारण हमारा प्रेम अनुचित है क्या ?

सुनयना : अनुचित तो नहीं, किन्तु गुरुजनों से अनुमोदित प्रेम कल्याण कर होता है।



श्यामा : सुनयने, तुम ऊँचे कुल में उत्पन्न कन्या हो इसलिये तुम्हारे

सुनयना : आलि, मम पिता हृदयरोगेण ग्रस्तो विद्यते । तेन बिभेमि यत् तथ्यं विज्ञाय स कथं सहिष्यते। तम् विना न कोऽपि जनो जगति तथा हितसाधकः ।

श्यामा : प्राणप्रियं कान्तिरामं विहायेति ब्रूहि ।

सुनयना : किमेवं परिहासं करोषि ? न जाने तं प्राणप्रियं लप्स्ये न वा ।

श्यामा : मुग्धे, मा चिन्तय । पश्य,

**नित्यं समग्रमनसा स्पृहितं भवेद् यत्**
**स्वल्पं प्रभूतमथवा सरलं दृढं वा ।**
**तत्पूरणेऽभिरूचितः कुमुदं विरिञ्चि**
**श्चन्द्रेण योजयति सिन्धुवरेण गङ्गाम् ॥४॥**

---

**नित्यमिति** (अन्वयः)—नित्यं समग्रमनसा यत् स्वल्पम् अथवा प्र भूतम् सरलं वा दृढम् स्पृहितं भवेत् तत्पूरणे अभिरूचितः विरिञ्चिः कुमुदं चन्द्रेण गंगां च सिन्धुवरेण योजयति ।

---

साथ विवाह करने वाला अपने को धन्य मानेगा, किन्तु सोमदत्त के साथ मेरा सम्बन्ध कैसे स्वीकृत होगा ।

सुनयना : सखि, मेरे पिता हृदय रोग से ग्रस्त हैं । इससे डरती हूँ कि सच्चाई को जानने पर वे कैसे सहन करेंगे । उनके बिना संसार में मेरा वैसा हितकारी कोई नही है ।

श्यामा : प्राण प्रिय कान्तिराम को छोड़कर-ऐसा कहो ।

सुनयना : क्यों इस प्रकार हँसी करती हो । पता नहीं उस प्राणप्रिय को पाऊँगी भी या नहीं ।

श्यामा : अरी, भोली, चिन्ता मत करो । देखो,

निरन्तर एकनिष्ठ मन से थोड़ी या बहुत, आसान या कठिन जिस किसी (वस्तु या व्यक्ति) की इच्छा की जाय उसे पूरा करने में रूचि रखने वाले विधाता (इच्छा जानकर ही) कमलिनी को चन्द्रमा से तथा गंगा को समुद्र से मिला देते हैं ।

सुनयना : सखि, मम पितुः स्वास्थ्यं न विद्यते शोभनम्। चिकित्सायां द्रव्यव्ययोऽपि भवति महान्। नावगच्छामि किं करोमि ?

श्यामा : धनस्य कृते चिन्तां मा गाः। तस्य व्यवस्था भविष्यति।

सुनयना : त्वं मे हृद्गता सखी तेन धन्यवादज्ञापमनपि कथं करवाणि ?

श्यामा : अलमेतेनायासेन। आलोकय, त्वां सभाजयितुं सम्प्राप्तः कान्तिरामः।

---

**व्याख्या**—नित्यं सततं समग्रमनसा समग्रेण अखण्डेन मनसा चित्तेन यात्किमपि स्वल्पं लघु अथवा प्रभूतम् प्रचुरम् सरलम् अकठिनं दृढं कठोरं वा वस्तु स्पृहितम् अभिलषितं भवेत् तत्पूरणे तेषां पूर्तौ अभिरुचितः रुचियुक्तः विरिञ्चिः ब्रह्मा चन्द्रेण कुमुदं योजयति सिन्धुवरेण विशालसमुद्रेण गंगां च योजयति संयोजयति मेलयति वा।

**तात्पर्यम्**—सर्वथा स्थिरचित्तेन यत् किमपि न्यूनम् अथवा विपुलं सरलं वा कठिनं वस्तु इच्छितम् भवेत् तत्सर्वेषां प्रदाने सम्पादने वा विधाता प्रवृत्तो भवति। तेनैव स्पृहितं ज्ञात्वा भुवि स्थितं कुमुदं गगनस्थितेन चन्द्रमसा योजयति। चन्द्रं दृष्ट्वा कुमुदं विकसति। एवमेव ब्रह्मा गंगानदीं विशालसागरेण सङ्गमं कारयति। कुमुदगंगयोः दृढां स्पृहां ज्ञात्वा विधिः चन्द्रसमुद्राभ्यां सह मेलयति।

अलंकारो दृष्टान्तः समासोक्तिश्च। छन्दः वसन्ततिलका।

---

सुनयना : सखि, मेरे पिताजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। इलाज में पैसा भी बहुत खर्च होता है। मैं समझती नहीं हूँ क्या करूँ ?

श्यामा : धन की चिन्ता मत करो। उसकी व्यवस्था हो जायेगी।

सुनयना : तुम मेरी आत्मीया सखी हो। इसलिये धन्यवाद ज्ञापन भी कैसे करूँ ?

श्यामा : यह प्रयास व्यर्थ है। देखो, तुम्हें आनन्दित करने के लिये कान्तिराम आ गया।

कान्तिरामः : (प्रविश्य) नमो भवद्भ्याम् ।

श्यामा : नमो नमः । समये समुपगतोऽसि । चिरं जीविष्यसि । सम्प्रति त्वद्गता वार्ता मे सखी-हृदयं प्रसादयति ।

कान्तिरामः : नायं जनस्तादृशो महान् योऽस्याः मनो रहसि रञ्जयितुं सौभाग्यमाप्नुयात् ।

श्यामा : हे सुभग, नान्यं जनं स्वप्नेऽपि चिन्तयति मे सखी । पुरुषः परुषः भवति तेन त्वं न वेत्सि प्रमदाहृदयम् । पश्य,

**चन्द्रः कदा चिन्तयते चकोरीं**
**या तं विना रज्यति जातु नैव ।**
**असौ निशायां कुमुदं समुद्र-**
**वीचिं समुल्लासयते करैश्च ॥५॥**

---

**चन्द्र इति (अन्वयः)**—चन्द्रः चकोरीं कदा आचिन्तयते या तं विना जातु नैव रज्यति । असौ निशायां करैः कुमुदं समुद्रवीचिं च समुल्लासयते ।

**व्याख्या**—चन्द्रः चकोरीं कदा आचिन्तयते समग्ररुपेण चिन्तयति न कदापीति भावः । या चकोरी तं चन्द्रं विना जातु कदाचिदपि न रज्यति अनुरक्ता भवति चन्द्रम्प्रति एव चकोरी अनुरागमभिव्यनक्ति नापरं कमपि प्रति किन्तु असौ चन्द्रः अनुरक्तां चकोरीम् उपेक्ष्य शठनायक इव रात्रौ न तु दिने

---

कान्तिराम : (प्रवेश करके) आपदोनों को नमस्कार ।

श्यामा : नमस्कार, नमस्कार । समय पर आये हो । बहुत दिन जीओगे । अभी तुम्हारी चर्चा मेरी सखी के हृदय को आनन्दित करती है ।

कान्तिराम : यह व्यक्ति वैसा महान नहीं है जो एकान्त में इसका मन बहलाने का सौभाग्य पा सके ।

श्यामा : हे, सौभाग्यशाली, मेरी सखी सपने में भी दूसरे व्यक्ति को नहीं सोचती है । पुरुष तो कठोर होता ही है । इसलिए तुम नारी के हृदय को नहीं जानते हो । देखो,

कान्तिराम: : साधु प्रोक्तं श्यामे, किन्त्वेतदपि विभावय, प्रकृतिं विना पुरुष: कियद् प्रभवति ? पुनश्च,

कलानिधिर्गच्छति रामणीयकं
कलाभिरानन्दति लोकलोचनम् ।
श्रव: क्व विप्रस्य विहाय वैदुषीं
बलं हि पुंसां सुखदाबला सदा ।।६।।

---

कुमुदं परकीयां नायिकामिव कमलिनीं समुद्रवीचिं सागरस्य ऊर्मिम् च करै: किरणै: हस्तैर्वा समुल्लासयते उल्लासयुक्तां विकसितां वा करोति ।

**तात्पर्यम्**—या चकोरी मुग्धा नायिकेव नायकं चन्द्रं विना कदापि न हृष्यति तां चकोरीं प्रति चन्द्र: तथा प्रेमशीलो न भवति किन्तु शठनायक इव रात्रौ निजहस्तरूपकिरणै: अपरां नायिकां कमलिनीं सागरोर्मिञ्च निजप्रेम-दानेन प्रफुल्लयति ।

अत्राप्रस्तुतप्रशंसा समासोक्तिश्चालंकार: । छन्दश्चोपजाति: ।

**कलानिधिरिति (अन्वय:)**—कलानिधि: कलाभि: रामणीयकं गच्छति लोकलोचनञ्च कलाभि: आनन्दति । वैदुषीं विहाय विप्रस्य श्रव: क्व ? सुखदा अबला हि सदा पुंसां बलं भवति ।

---

चन्द्रमा चकोरी का ख्याल कब करता है ? जो (चकोरी) उस (चन्द्रमा) के बिना कभी अनुराग युक्त नहीं होती है । यह (चन्द्र) रात में अपने हाथ रूपी किरण से कमलिनी और समुद्र की लहरों को (उनके प्रति अनुराग से) उल्लसित करता है ।

कान्तिराम : तुमने ठीक कहा श्यामे, किन्तु यह भी विचार करो कि प्रकृति के बिना पुरुष कितना प्रभावी हो पाता है । फिर,

सुनयना : सखि, पितुः पार्श्वे गमनो विलम्बो भवति तेनाहं गृहं जिगमिषामि ।

श्यामा : कथमेकाकिनी गमिष्यसि ? कान्तिरामेण साकमहमपि त्वामनुगमिष्यामि ।

---

**व्याख्या**—कलानिधिः कलाःनिधीयन्तेऽस्मिन्निति कलानिधिः चन्द्रः कलाभिः ज्योत्स्नाभिः रामणीयकं गच्छति रमणीयो भवति लोकलोचनं लोकानां जनानां लोचनं नेत्रं कलाभिरेव आनन्दति नन्दयति । विप्रस्य मेधाविनो विदुषः पुरुषस्य वा श्रवः कीर्तिः वैदुषीं विद्यां वैदुष्यं वा विहाय क्व भवति न कुत्रापीति शेषः । सुखदा सुखदायिनी अबला स्त्रीः पुंसां पुरूषाणां बलं सामर्थ्यं वा सदा सततं भवति ।

**तात्पर्यम्**—चन्द्रः नायिकारुपाभिः कलाभिः सह रम्यो भवति । जनानां नेत्रं कलाभिः हृष्यति । ब्राह्मणः विद्यया एव लोके समादृतो भवति । एतेन स्पष्टं यत् कलाविद्यादयः स्त्रीलिङ्गवाचका एव चन्द्रविप्रादीनां पुंल्लिङ्गानां महत्तां वर्धयन्ति । तेनानुकूला स्त्रियः पुरुषाणां समृद्धौ हेतुतां गच्छन्तीति तात्पर्यम् ।

कार्यकारणभावात् काव्यलिङ्गालङ्कारः । विशेषकथनस्य सामान्यकथन-समर्थनादर्थान्तरन्यासोऽपि । छन्दश्चात्र वंशस्थभ् । तल्लक्षणमेवम्—

'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' ।

---

चन्द्रमा की रमणीयता कलाओं (चाँदनी) से होती है तथा वह (चन्द्रमा) कलाओं से ही लोगों की आँखों को आनन्दित करता है । विद्वत्ता या विद्या के बिना विद्वानों का यश कहाँ होता है ? इस प्रकार सुख देनेवाली स्त्री ही पुरुषों का बल हुआ करती है ।

सुनयना : सखि, पिताजी के पास जाने में देर हो रही है । इसलिए मैं घर जाना चाहती हूँ ।

श्यामा : अकेली क्यों जाओगी ? कान्तिराम के साथ मैं भी तुम्हारे पीछे चलूँगी ।

**कान्तिरामः** : यथा निर्दिशति तत्र भवती ।

**सुनयना** : तथास्तु ।

( सर्वे निर्गच्छन्ति )

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

---

## षष्ठोऽङ्कः

**(पर्यङ्के उपविष्टो ब्रह्मदत्त एकाकी चिन्तयति)**

**ब्रह्मदत्तः** : न जाने सम्प्रति सुनयना क्व गता ? मत्सेवायां निरता सा स्वाध्यायेऽपि समग्ररूपेण न प्रवर्तते । अधुना सा विवाहयोग्या जाता, किन्तु को नाम युवा प्रचुरं दायाजं विना तस्याः पाणिं ग्रहीष्यति । (उपरि प्रेक्ष्य) भूतभावन, त्वमेव मम शरणमसि । विधेहि किञ्चित् (इति ध्यानं करोति) ।

**(ततः प्रविशति सुनयना श्यामया कान्तिरामेण च सह)**

---

**कान्तिराम** : जैसा आपका निर्देश हो ।

**सुनयना** : वैसा ही हो ।

( सभी जाते हैं )

॥ पाँचवाँ अङ्क समाप्त ॥

## छठा अंक

**(पलंग पर बैठे हुए ब्रह्मदत्त अकेले सोच रहे हैं)**

**ब्रह्मदत्त** : मालूम नहीं, सुनयना अभी कहाँ चली गयी ? मेरी सेवा में लगी रहने के कारण वह अपने अध्ययन में भी पूर्ण रूप से प्रवृत्त नहीं हो पाती है । अब वह विवाह के योग्य हो गयी है किन्तु कौन ऐसा युवक होगा जो पर्याप्त दहेज के बिना उसका

सुनयना : तात, पश्यतु भवान्, इयं मे आत्मीया सखी श्यामा भवन्तं द्रष्टुमत्र समागता ।

श्यामा : नमः पितृचरणाभ्याम् ।

ब्रह्मदत्तः : मनोऽभिलषितं समाप्नुहि ।

श्यामा : तात, अयमस्माकं सहाध्यायी कान्तिरामः प्राप्तः ।

कान्तिरामः : नमस्तातवर्याय ।

ब्रह्मदत्तः : सिद्धिं याहि ।

कान्तिरामः : धन्योऽहं भवतो दर्शनेन सफलश्च मे मनोऽभिलाषः श्रीमतः आशीर्वचनेन ।

श्यामा : कीदृशं भवतां स्वास्थ्यम् ?

---

हाथ पकड़ेगा ? (ऊपर देखकर) हे भूतभावन, तुम्हीं मेरे शरण हो । कुछ तो करो (इस प्रकार ध्यान करते हैं)

**(उसके बाद श्यामा और कान्तिराम के साथ सुनयना प्रवेश करती है)**

सुनयना : तात, आप देखिए, यह मेरी आत्मीय सखी श्यामा आपको देखने के लिये यहाँ आयी है ।

श्यामा : पिताजी के चरणों को प्रणाम ।

ब्रह्मदत्त : मनोवांछित वस्तु पाओ ।

श्यामा : पिताजी, ये हमलोगों के साथ पढ़ने वाले कान्तिराम आये हैं ।

कान्तिराम : श्रेष्ठ पिताजी को प्रणाम है ।

ब्रह्मदत्त : सफलता प्राप्त करो ।

कान्तिराम : आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया और आपके आशीर्वचन से मेरे मन की अभिलाषा पूरी हो गयी ।

श्यामा : आपका स्वास्थ्य कैसा है ?

**ब्रह्मदत्तः** : न चलति सम्यक्। किन्तु यदेव चलति युष्माकं सौजन्येन चलति।

**श्यामा** : कथमेवं ब्रवीति भवान्? किं तातपादो मामात्मजां न विभावयति?

**ब्रह्मदत्तः** : तथैव विभावयामीति न कोऽपि सन्देहलवः, किन्तु तव सखी-विषये वार्धकेऽस्मिन् वयसि चिन्तयामि। कस्यापि योग्यस्य जनस्य हस्त इमां समर्प्य ममान्तरात्मा विशदो भवेत्।

**सुनयना** : पितृचरणाः, किमयं जनो भारभूतो जातः?

**ब्रह्मदत्तः** : नैवं पुत्रि कदाचन, त्वं मे प्राण भूतासि, किन्तु विधेयन्तु विधेयमेव।

**श्यामा** : पूज्यवाद, न चिन्तयतु भवान्। कालः सर्वं साधयति।

---

**ब्रह्मदत्त** ; ठीक नहीं चल रहा है, लेकिन जो रहा है तुमेलोगों के सौजन्य से चलता है।

**श्यामा** : आप क्यों ऐसा कहते हैं? क्या आप मुझे अपनी बेटी नहीं समझते हैं?

**ब्रह्मदत्त** : वैसा ही समझता हूँ—इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है, मगर तुम्हारी सहेली के बारे में इस बुढ़ापे में सोचता रहता हूँ। किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में इसे समर्पित कर मेरी अन्तरात्मा स्वच्छ एवं भारमुक्त हो जाए।

**सुनयना** : पिताजी, यह व्यक्ति (मैं) भार बन गयी है क्या?

**ब्रह्मदत्त** : ऐसा कभी नहीं, बेटी, तुम मेरा प्राण हो, लेकिन करणीय कार्य तो करना ही है।

**श्यामा** : पूज्यचरण, आप चिन्ता न करें। समय सब कुछ सम्पन्न कर देता है।

कान्तिरामः : विषयेऽस्मिन् वयमपि विचारणापराः स्मः। तेन चिन्तामपहाय स्वास्थ्यलाभे प्रवर्तताम् भवान्। यतः स्वास्थ्यहानेः प्रधानो हेतुश्चिन्तैव कथ्यते—

**आधिर्व्याधिर्मानवानाम्प्रमोदे**
**चारोग्ये ज्ञेयोऽन्तरायः प्रधानः।**
**त्यक्त्वा पूर्वं कल्पनीया परस्मा**
**न्मुक्तिः स्वस्थं जीवनं जीवनीयम् ॥१॥**

ब्रह्मदत्तः : वत्स, तव कथनं नितरां प्रशंसनीयम्।

श्यामा : तात, न केवलं प्रशंसनीयमपितु पालनीयं सदा।

ब्रह्मदत्तः : तथा कर्तुं यतिष्ये, पुत्रि।

---

आधिव्यधिरिति (अन्वयः)—मानवानां प्रमोदे आरोग्ये च प्रधानः अन्तरायः आधिः व्याधिः ज्ञेयः। पूर्वं त्यक्त्वा परस्मात् मुक्तिः कल्पनीया स्वस्थं जीवनं जीवनीयम्।

---

कान्तिराम : इस बिषय में हमलोग भी विचार कर रहे हैं। अतः चिन्ता छोड़कर आप स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रवृत्त होवें क्योंकि स्वास्थ्य की गड़बड़ी में प्रधान कारण चिन्ता ही बतायी गयी है।

मनुष्य के आनन्द और नीरोगता में मानसिक चिन्ता और शारीरिक रोग मुख्य बाधक है। पहले (चिन्ता) को छोड़कर दूसरे (बिमारी) से मुक्ति की बात सोचनी चाहिये और स्वस्थ जीवन-जीना चाहिये।

ब्रह्मदत्त : बेटे, तुम्हारा कथन बहुत प्रशंसा के योग्य है।

श्यामा : पिताजी, केवल प्रशंसा के योग्य नहीं, बल्कि हमेशा पालन करने योग्य भी।

ब्रह्मदत्त : वैसा करने का प्रयास करूँगा, बेटी।

कान्तिरामः : स्तुत्यचरण, यदि भवते रोचत, प्रत्यहमागमिष्यामि। भवतः सेवायाञ्च कञ्चित् कालं स्थास्यामि।

ब्रह्मदत्तः : तत्र कास्ति विचारणा? साधु समागच्छ। एतेन सुनयनापि विश्रामं लप्स्यते।

कान्तिरामः : अधुना गृहे कार्यमेकं सम्पादनीयं विद्यते। तेनानुजानातु मे गृहगमनाय।

ब्रह्मदत्तः : सुखं गच्छ।

---

**व्याख्या**—मानवानां मनुष्याणां प्रमोदे आनन्दे आरोग्ये नीरोगतायाञ्च प्रधानः मुख्यः अन्तरायः विघ्नः ('विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः) आधिः मानसिकं कष्टम् ('पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः) व्याधिः दैहिकी पीड़ा भवतीति शेषः। पूर्वम् आधिं त्यक्त्वा परस्मात् द्वितीयात् शारीरिकरोगात् मुक्तिः राहित्यं कल्पनीया चिन्तनीया स्वस्थं नीरोगं जीवनं जीवनीयम् यापनीयम्।

**सारांश**—मनुष्या जीवने आनन्दम् इच्छन्ति। आनन्दस्य प्रथमः सोपानः अरोगिता। आधौ व्याधौ सति नारोग्यं न चानन्दः प्राप्तुं शक्यते। व्याधेरपि मूल आधिर्भवति। तेन मानसिकचिन्ताम् विहाय रोगात् मुक्तिः सम्भाव्यते। स्वस्थं सानन्दञ्च जीवनं भवितुमर्हति।

अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः। छन्दश्च शालिनी। तल्लक्षणमेवमुक्तम्-मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

---

कान्तिराम : पूज्यवाद, यदि आपको अच्छा लगे तो मैं प्रतिदिन आऊँगा और आपकी सेवा में कुछ समय रहूँगा।

ब्रह्मदत्त : इसमें विचार क्या करना है। अच्छी बात है, आओ। इससे सुनयना को भी आराम मिलेगा।

कान्तिराम : इस समय मुझे घर में एक काम करना है। इसलिये मुझे घर जाने की अनुमति दें।

ब्रह्मदत्त : सुख से जाओ।

श्यामा : कान्तिराम, श्वः त्वयावश्यमागन्तव्यम् ।
कान्तिरामः : नूनमागमिष्यामि । नमो भवद्भ्यः ।
ब्रह्मदत्तः : कल्याणमस्तु ।

(कान्तिरामो निर्गच्छति)

ब्रह्मदत्तः : श्यामे, प्र भविष्णुरयं युवा प्रभाववानिव लक्ष्यते ।
श्यामा : आम्, विद्यया लक्ष्म्या च सम्पन्नोऽयं जनः स्वभावेन मधुरो विनम्रश्च विद्यते ।
सुनयना : श्यामे, किमपि स्वल्पाहारं गृहाण ।
श्यामा : अपरेद्युः ग्रहीष्यामि । इदानीं मामनुजानीहि । तात, भवद्भिः सकलैः श्वः मम जन्मदिवसायोजनं निजोपस्थित्या सनाथ्यम् । पूज्यपाद, नमो नमः ।
ब्रह्मदत्तः : पुत्रि, योगक्षेमं लभस्व ।

---

श्यामा : कान्तिराम, कल तुझे अवश्य आना है ।
कान्तिराम : जरूर आउँगा । आप सब को प्रणाम ।
ब्रह्मदत्त : कल्याण होवे ।

कान्तिराम चला जाता है ।

ब्रह्मदत्त : श्यामे, होनहार यह युवक प्रभावशाली दीख पड़ता है ।
श्यामा : हाँ, विद्या और धन से सम्पन्न यह व्यक्ति स्वभाव से मधुर और विनम्र है ।
सुनयना : कुछ अल्पाहार ग्रहण करो ।
श्यामा : दूसरे दिन लूंगी । अब मुझे अनुमति दो । पिताजी, कल आप सबलोग अपनी उपस्थिति से मेरे जन्मदिन के आयोजन को सनाथित करें । पूज्यपाद, प्रणाम ।
ब्रह्मदत्त : पुत्रि, योगक्षेम[1] प्राप्त करो ।

---

१. जो लाभ नहीं प्राप्त है उसे प्राप्त करना योग है । प्राप्त लाभ की रक्षा करना क्षेम है ।

**श्यामा** : कृतार्थास्मि (इति निर्गच्छति)।

**ब्रह्मदत्तः** : (आत्मगतम्) न जाने वेधस इच्छाम् किन्तु,

**मातुर्विहीनतनुजालतिकाम्प्ररूढां स्नेहोदकेन सततं बहुयत्नसिक्ताम्।**
**एनां ददामि गुणयुक्तवराय दैवात् सत्यं न मे जगति कोऽपि परोऽ-**
**भिलाषः ॥२॥**

(निर्गच्छतः)

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

---

**मातुरिति (अन्वयः)**—मातुः विहीनतनुजालतिकां सततं स्नेहोदकेन बहुयत्नसिक्तां प्ररूढाञ्च एनाम् दैवात् गुणयुक्तवराय ददामि (तर्हि) सत्यं जगति मे परः कोऽपि अभिलाषः न।

**व्याख्या**—मातुः जनन्याः विहीनतनुजालतिकाम् विहीना वियुक्ता या तनुजा पुत्रीरूपा लतिका लता सा विहीनतनुजालतिका ताम् सततं सर्वदा स्नेहः प्रेम ('प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः' इत्यमरः) एव उदकं जलं तेन प्रेमवारिणा बहुयत्नसिक्ताम् बहुयत्नपूर्वकं सिञ्चिताम् फलतः प्ररूढां पूर्णविकसितां प्राप्त-यौवनां पितृगेहस्थाम् एनां पुत्रीं सुनयनां दैवात् भाग्यवशात् गुणयुक्तवराय वैदुष्यमृदुत्वादिगुणैः युक्ताय वराय श्रेष्ठजनाय जामात्रे वा ददामि पाणिग्रह-णार्थं समर्पयामि तदा सत्यम् सत्यमेव जगति संसारे मे मम ब्रह्मदत्तस्य परः अपरः अभिलाषः इच्छा न नास्ति। न शिष्यते वा। सर्वो मनोरथः पूरित इति।

**सारांश**—मातुः रहितां पुत्रीलतां यत्नपूर्वकं सर्वदा स्नेहजलेन सिञ्चितां फलतः पूर्णविकसितां प्राप्तयौवनामिमां तनयाम् सुनयनाम् विद्याविनयादिगुणैः सम्पन्नाय वराय समर्पयामि तदा निश्चयेन संसारे मम काचिदपि स्पृहा न शिष्यते अतश्चिन्तामुक्तोऽहं भविष्यामि।

अत्र तनुजायाम् लतिकारोपात् स्नेहे जलस्य आरोपात् रूपकालङ्कारः स्फुटः। तल्लक्षणमेवम् 'रूपकं रूपितारोपे विषये निरपह्नवे।' वृत्तं वसन्ततिल-कम्। तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम्।

---

**श्यामा** : मैं कृतार्थ हूँ। (वह चली जाती है।)

## सप्तमोऽङ्कः

(श्यामायाः जन्मोत्सवसमारोहे जनाः आयान्ति निजोपहारं च प्रदाय परस्परं समालपन्ति । सोमदत्तः कान्तिरामेण सममागच्छति । श्यामा तौ विलोक्य नितरां मोदते ।

सोमदत्तः : (श्यामामुपगम्य पुष्पोपहारं च प्रदाय) श्यामे, वर्धापनम् अस्तु । बहुयत्ने कृतेऽपि तवानुकूलमुपहारवस्तु प्राप्तुं नाहमशक्नुवम् । तेन यदानीतं तदेव स्वीकृत्यानुगृहाण ।

---

ब्रह्मदत्त : (मन ही मन) ब्रह्मा की इच्छा को नहीं जानता हूँ । किन्तु,

मातृविहीन एवं स्नेहरूपी जल से बहुत यत्नपूर्वक सींची गयी और पूर्ण विकसित की गयी पुत्री रूपी इस लता (सुनयना) को भाग्यवश गुणों से युक्त वर को दे दूँ तो सचमुच संसार में मेरी कोई भी दूसरी इच्छा नहीं है ।

(दोनों निकल जाते है)

।। छठा अंक समाप्त ।।

## सप्तम अङ्क

(श्यामा के जन्मोत्सव समारोह में लोग आते हैं और अपना उपहार देकर परस्पर बातें करते हैं। सोमदत्त कान्तिराम के साथ आता है। उन दोनों को देखकर श्यामा बहुत प्रसन्न होती है ।)

सोमदत्त : श्यामा के पास जाकर और फूलों का उपहार देकर) श्यामे, बधाई हो। बहुत प्रयास करने पर भी तुम्हारे अनुकूल

**श्यामा** : नैवं जातु त्वया वाच्यम् । तव पदार्पणमेवात्र सर्वोत्कृष्ट उपहारः । न त्वं जानासि मे चित्तं कियद् विक्लवम् आसीत् त्वदागमने जाते विलम्बे ।

**सोमदत्तः** : विलम्बस्य कृते क्षम्योऽयञ्जनः ।

**कान्तिरामः** : (बहुमूल्यमुपहारं दत्त्वा) श्यामे, वर्धापनम् । नहि क्षम्योऽयं जनः । एतत्कृते ममापि विलम्बोऽभूत् ।
(ततो निजपित्रा ब्रह्मदत्तेन साकमागच्छति सुनयना)

**श्यामा** : नमो भवद्भ्याम् ।

**ब्रह्मदत्तः** : श्यामे पुत्रि, जन्मदिवसो मङ्गलमयो भूयात् । दिष्ट्या वर्धसे ।

**श्यामा** : धन्यवादाः, अद्य भवतोरागमनेन कृतार्थतां गताऽहम् ।

**सुनयना** : सखि, दिवसोऽयमभीष्टप्रदो भवतु ।

---

उपहारवस्तु प्राप्त नहीं कर सका । इसलिए जो लाया उसे ही स्वीकार कर अनुगृहीत करो ।

**श्यामा** : ऐसा मत कहो कभी । तुम्हारा यहाँ आ जाना ही सर्वश्रेष्ठ उपहार है । तुम नहीं जानते हो तुम्हारे आने में देर होने पर मेरा मन कितना व्याकुल था ।

**सोमदत्त** : देर के लिये क्षमा कर दो इस व्यक्ति को ।

**कान्तिराम** : (बहुमूल्य उपहार देकर) श्यामे, बधाई हो । इस व्यक्ति को क्षमा नहीं करना । इसीके लिये मुझे भी देर हुई ।
(उसके बाद अपने पिता ब्रह्मदत्त के साथ सुनयना आती है)

**श्यामा** : आप दोनों को प्रणाम ।

**ब्रह्मदत्त** : बेटी श्यामे, जन्मदिन मङ्गलमय हो । इसके लिये बधाई ।

**श्यामा** : धन्यवाद, आज आपदोनों के आने से मैं कृतार्थ हो गई ।

**सुनयना** : सखि, यह दिन इच्छित फल देने वाला बने ।

श्यामा : एवमेव त्वत्कृतेऽपि ।

**(ततः श्यामायाः पिता राजदत्तः प्रविशति, सर्वान् प्रणमति) सर्वे समुपविशन्ति)**

**राजदत्तः :** अभिनन्दनमत्र समागतसज्जनानां समेषाम् । सम्प्रति विदाङ्कुर्वन्तु सन्तो भवन्तो यदद्य ममैकला सुता श्यामा अष्टादशवर्षीया जाता । तेनाष्टादश दीपान् प्रज्वाल्य जन्मोत्सव-कार्यक्रमः प्रारभ्यते ।

**(श्यामा दीपान् प्रज्वालयति सर्वे करतालिकां ददति)**

**राजदत्तः :** तत्र भवतामत्र पदार्पणेन मम गौरवं सम्वर्धितं तेन कृतज्ञतां ज्ञापयामि । सम्प्रति श्रीमतां मनोरञ्जनार्थं संगीतकार्यक्रमः समायोज्यते । निजमधुरगानेन भवताम्पुरः समुपस्थातुं निवेद्यते कोकिलकण्ठः सोमदत्तः ।

---

**श्यामा :** ऐसा ही तुम्हारे लिये भी हो ।

**(उसके बाद श्यामा के पिता राजदत्त प्रवेश करते हैं, सबों को प्रणाम करते हैं । सब लोग बैठ जाते हैं)**

**राजदत्त :** यहाँ आये हुए सभी सज्जनों का अभिनन्दन है । अब आप सभी सज्जन जान लें कि आज मेरी एकलौती बेटी श्यामा अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी है । इसलिये अठारह दीप जलाकर जन्मोत्सव कार्यक्रम का आरम्भ किया जाता है ।

**(श्यामा दीपकों को जलाती है । सभी ताली बजाते हैं)**

**राजदत्त :** आप सबों के आने से मेरा गौरव बढ़ा है । इसलिये मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । इस समय आपके मनोरंजन के लिये संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया जा रहा है । अपने मधुर गान के साथ आपके सामने उपस्थित होने के लिये कोयल के समान कण्ठ वाले सोमदत्त से निवेदन है ।

**सोमदत्त :** (समुपस्थाय) नाहं गायनकलादक्षस्तथापि राजदत्त-महोदयस्यादेशं पालयिष्यामि किन्त्वत्र मदीयं सह भागित्वं निर्वोढुं निर्देशनीया गायनकला-चतुरा सुश्रिका श्यामेति मम निवेदनम् ।

**राजदत्तः :** तथास्तु । श्यामे, समागच्छ सहभागित्वञ्च सम्पादय ।

(श्यामा समागच्छति सोमदत्तेन सह गायति च)

**श्यामा सोमदत्तौ :**

गच्छति नरो हि प्रीतिं जीवने यदा कदा ।
प्राप्ते च प्रीतिसमये भावो न हर्षभिन्नो ।।
लोके भवेत्कश्चिद् धनवान् वाऽधनो वा ।
उच्चो भवेद्वा नीचो गौरोऽथवा च कृष्णः ।।
पीनो भवेद्वा सूक्ष्मः प्राशुर्भवेद्वा वामनः ।
यो रोचते च यस्मै द्रुह्येत न कोऽपि तस्मै ।।
स्नेहो न वेत्ति जातिं धर्मं न चापि वर्णम् ।
संगत्य सर्वे सहृदया उद्घोषयन्तु त्वरितम् ।।
विनायकोऽपि वदते प्रेमा सदा विजयताम् ।
प्रेमा सदा विजयतां प्रेमा सदा विजयताम् ।।

---

**सोमदत्त :** (उपस्थित होकर) मैं गाने की कला में निपुण नहीं हूँ, फिर भी राजदत्त महोदय के आदेश का पालन करूँगा, लेकिन यहाँ मेरा साथ देने के लिये गायन कला में चतुर सुश्री श्यामा को निर्देश दिया जाय—यह मेरा निवेदन है ।

**राजदत्त :** वैसा ही हो । श्यामा आओ और साथ दो ।

(श्यामा आती है और सोमदत्त के साथ गाती है)

**श्यामा और सोमदत्त :** जीवन में मनुष्य कभी-कभी प्रेम पाता है । प्रेम का अवसर प्राप्त होने पर आनन्द से अलग कोई भाव या

**सर्वे** : साधु, साधु, सुष्ठु गीतम्, मनो मुग्धम् ।

**राजदत्तः** : सोमदत्त, त्वमत्र समुपस्थित-जनानां मनोऽमोदयः तेन त्वत्कृते किमपि कर्तुमुत्कायते मदीयं चित्तम् । अतः भण, किन्ते समीप्सितं सम्पादयामि सम्प्रति ?

**सोमदत्तः** : एतत्कृते धन्यवादः ।

**राजदत्तः** : सोमदत्त, यदि त्वं तथा किमपि न भणसि तदा मम चित्तं चेखिद्यते ।

**सोमदत्तः** : मान्यवर, नाहं निर्धारयामि यद् भवानौपचारिकमाचरति किमपि उत हृदयेन तथा भणति ।

---

अनुभव होता ही नहीं है । संसार में कोई धनी हो या निर्धन, ऊँच हो या नीच, गोरा हो या काला, मोटा हो या दुबला, लम्बा हो या नाटा हो—जो जिसको पसन्द आता है उससे कोई द्रोह नहीं करे । प्रेम न तो जाति को जानता है और न धर्म या वर्ण को ही । इसलिये सभी सहृदय मिलकर जल्द ही घोषणा करें । गणेशजी भी ज्ञानपूर्वक या प्रयत्नपूर्वक कहते हैं—प्रेम की सदा विजय हो, प्रेम की सदा विजय हो । प्रेम की सदा विजय हो ।

**सभी** : वाह, वाह, बहुत अच्छा गाया । मन मोहित हो गया ।

**राजदत्त** : सोमदत्त, यहाँ उपस्थित सभी लोगों का मन तुमने मोह लिया है । इस कारण तुम्हारे वास्ते कुछ करने को मेरा चित्त उत्सुक हो उठा है । इसलिये बताओ इस समय तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ ?

**सोमदत्त** : इसके लिए धन्यवाद ।

**राजदत्त** : सोमदत्त, यदि तुम वैसा कुछ नहीं कहते हो तो मेरा चित्त बहुत ही खिन्न हो जाएगा ।

**सोमदत्त** : मान्यवर, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि आप औपचारिकता दिखा रहे हैं या हृदय से वैसा कह रहे हैं ।

राजदत्तः : शृणु भोः, सन्ति साक्षिण एते सभ्याः। राजदत्तो यत् किमपि ब्रूते तथ्यमेव ब्रूते पूरयति चापि। तेन निश्शङ्कं निवेदय निजाभिवाञ्छितं भूमिं भवनं यानं वित्तं वृत्तिं वा।

सोमदत्तः : एवञ्चेत् श्रूयतां भवद्भिर्दत्तावधानैः—

**न वाञ्छा मदीया धने वा न हर्म्ये न याने न भूमौ न वृत्तौ परञ्च।**
**पुरः सन्नतेयं सुवर्णाऽद्वितीया द्वितीया भवेत्सङ्गतिञ्चाधितिष्ठेत् ॥१॥**

---

**न वाञ्छेति** (अन्वयः)—मदीया वाञ्छा न धने न हर्म्ये न याने न भूमौ न वा वृत्तौ परञ्च पुरः सन्नतेयमद्वितीया सुवर्णा मदीया द्वितीया भवेत् सङ्गतिञ्चाधितिष्ठेत्।

**व्याख्या**—मदीया मम वाञ्छा इच्छा न धने अर्थे न हर्म्ये विशाले भवने न याने मोटरादिवाहने न भूमौ भूखण्डे न वा वृत्तौ जीविकायां वा विद्यते। एतेषु किमपि नाहं कामये परञ्च किन्तु पुरः सम्मुखम् सन्नता सम्यक् प्रकारेण नता नम्रमुखी वा अद्वितीया अनन्या अनुपमेया वा सुवर्णा शोभनवर्णा सर्वाङ्ग-शोभना वा द्वितीया सहधर्मिणी ('पत्नी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमरः) भवेत् सङ्गतिं साहचर्यं च अधितिष्ठेत् अधिवसेत्।

---

राजदत्त : सुनो जी, ये सम्मान्य जन गवाह हैं। राजदत्त जो भी कहता है, सच्चाई कहता है और उसे पूरा भी करता है। इसलिए शंका रहित होकर अपना अभिलषित जमीन, मकान, गाड़ी, दौलत या जीविका के बारे में बताओ।

सोमदत्त : यदि ऐसा है तो आपलोग ध्यान देकर सुनिए—मेरी इच्छा न धन में है, न महल में है, न गाड़ी में है, न जमीन में है, न जीविका में है, किन्तु सामने झुकी हुई श्यामा नामक यह अद्वितीय सुन्दरी मेरी पत्नी बने और मेरे साथ में रहे (यही कामना है)।

सोमदत्तः : तथास्तु । सवर्थानुमोदितं तवाभीप्सितम् ।
सर्वे : साधु, साधु, धन्या खलु वदान्यतैषा ।
कान्तिरामः : सखे, सोमदत्त, वर्धापनमस्तु । युवयोः दाम्पत्यजीवनं सर्वथा सुखदं चिरं मङ्गलमयञ्च भूयात् ।
सोमदत्तः : धन्यवादः, नाधुना मे प्रमोदो वेत्ति सीमानम् । कथय, त्वत्कृते किमपि साधनीयञ्चेन्मया ।
कान्तिरामः : युज्यते चेन्ममापि जीवनं सुरक्ष्यं सुनयनाहस्ते ।
सोमदत्तः : साधु, सखे, साधु, एवम्भूतेऽस्माकं प्रमोदो द्विगुणितो भविष्यति । (ब्रह्मदत्तस्य पार्श्वे गत्वा) तात, किं विचारयति भवान् ? शीघ्रमनुजानातु सुनयना कान्ति-रामयोः पाणिग्रहणायेति प्रार्थना मदीया ।

---

सारांश—मम सोमदत्तस्याभिलाषः अर्थं विशालभवनं वाहनं शकटं भूखण्डं जीविकासाधनं वा प्राप्तुं नहि प्रवर्तते, किन्तु इयं सम्मुखस्था शोभनाङ्गा अद्वितीयासुन्दरी त्वदीया पुत्री मम सहधर्मिणी सङ्गिनी च भवत्विति कामये । अत्र श्यामाम्प्रति सोमदत्तस्य रतेरभिव्यक्तेः शृङ्गारो रसो व्यङ्ग्यः । अनुप्रासालंकारः यमकश्च । वृत्तञ्च भुजङ्गप्रयातम् ।

---

राजदत्त : वैसा ही हो । तुम्हारी चाहत को सर्वथा स्वीकृति है ।
सभी : बहुत अच्छा, बहुत अच्छा । धन्य है यह उदारता ।
कान्तिराम : मित्र सोमदत्त, बधाई हो । तुम दोनों का वैवाहिक जीवन पूर्णतः सुखद, चिरकालिक और मङ्गलमय होवे ।
सोमदत्त : धन्यवाद, अभी मेरे आनन्द की सीमा नहीं है । कहो, तुम्हारे लिए यदि मुझे कुछ करना हो ।
कान्तिराम : यदि युक्त हो तो मेरी भी जिन्दगी सुनयना के हाथ में सुरक्षित कर दो ।
सोमदत्त : बहुत अच्छा मित्र, ऐसा होने पर हम सबों का आनन्द दूना हो जाएगा । (ब्रह्मदत्त के पास जाकर) तात आप क्या सोचते हैं ?

श्यामा : तात, न केवलं कान्तिरामः सुनयनां कामयते किन्तु सुनयनापि तस्मै स्निह्यति। भवानपि योग्यं प्र भविष्णु च कान्तिरामं प्रशंसति स्म। तस्मात् स्वकीयाशीराशिभिः कृतार्थीकरणीयोऽयं वरकन्यायुगलः। नात्र कापि विचारणा।

ब्रह्मदत्तः : (अश्रूणि प्रसृज्य उपरि चाभिलक्ष्य) भगवन्, भूतभावन, तव महिमा विद्यते महान्। अनायासमेव मे चिन्ता व्यपगता। सकलोऽभिलाषः पूरितः। कृतं मे हृदयानुज्ञातम्।

राजदत्तः : आगच्छतु मे सधर्मन्, ब्रह्मदत्त महोदय, आवयोः कामना युगपदेव सम्पन्ना। कथय किम् भवतो भूयः प्रियम्।

---

सुनयना और कान्तिराम के विवाह के लिए जल्द अनुमति दें। यह मेरी प्रार्थना है।

श्यामा : तात, न केवल कान्तिराम ही सुनयना को चाहता है, बल्कि सुनयना भी उससे प्रेम करती है। आप भी योग्य और होनहार कहकर कान्तिराम की प्रशंसा करते थे। इसलिए अपने ढेर सारे आशीर्वादों से इस वर और कन्या के जोड़ा को कृतार्थ कर दें। इसमें कुछ सोचना नहीं है।

ब्रह्मदत्त : (आँसू पोछकर तथा ऊपर देखकर) भगवन् भूतभावन, तुम्हारी महिमा बहुत बड़ी है। बिना प्रयास के ही मेरी चिन्ता दूर हो गयी। सभी अभिलाषा पूरी हो गयी। मेरे इच्छानुकूल सब सम्पन्न हो गया।

राजदत्त : आइये, मेरे समान कर्त्तव्य वाले ब्रह्मदत्त महोदय, हम दोनों की कामना एक साथ ही सम्पन्न हो गयी। कहिए, आपके लिए और अधिक प्रिय क्या है?

ब्रह्मदत्तः : सकलं समुपपन्नम् । इदानीन्तु प्रार्थ्यते जगत्पतिः—
(भरतवाक्यम्)

**अनुरागयुता युवतिर्युवकमनुरूपगुणं जनकाभिमतम् ।**
**तरूणस्तरूणीं विनयावनतां कुलजां लभतामिति मेऽनुनयः ।।२।।**

इति बेगूसरायमण्डलान्तर्गत-गोनुचक-ग्राम-वासि डा० रामविलास चौधरि-प्रणीतम् अद्भुतपाणिग्रहणं नाम नाटकं समाप्तम् ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति सप्तमोऽङ्कः ।।

---

**अनुरागयुतेति (अन्वयः)**—अनुरागयुता युवतिः अनुरूपगुणं जनकाभिमतं युवकं लभताम् तरुणश्च कुलजां विनयावतां वनितां लभतामिति मेऽनुनयः ।

**व्याख्या**—अनुरागयुता अनुरागेण स्नेहेन सम्पन्ना वा युवतिः कुमारी अनुरूपगुणं रूपेण गुणेन च योग्यं तथा जनकाभिमतं जनकस्य पितुः अभिमतं सम्मतं युवकं युवानं वरं लभताम् प्राप्नुयात् । एवमेव तरूणः युवकः विनयावनताम् विनयेन अवनतां युक्तां कुलजाम् सद्वंशोत्पन्नाम् तरूणीं युवतिं लभताम् पत्नीरूपे गृह्णीयात् इति एवम्प्रकारेण में मम अनुनयः जगत्पतिं प्रति विनयः निवेदनं वा ।

अत्र अनुप्रासः दीपकालंकारश्च । वृत्तञ्च तोटकम् तल्लक्षणमेवम् 'वद तोटकमब्धि सकारयुतम्' इति ।

सर्वे सकलाः निष्क्रान्ताः निर्गताः ।

इति पाटलिपुत्रवास्तव्यया दीवानबहादुरराधाकृष्णजालाननामक इन्टरस्तरीयपटनासिटीविद्यालये हिन्दी-संस्कृताध्यापिकया ध्रुवकुमारीचौधरीत्याख्यया विरचितायामद्भुतपाणिग्रहणनाटकस्य 'कल्याणी' समभिधायां व्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।

---

ब्रह्मदत्त : सब सम्पन्न हो गया । इस समय संसार के स्वामी से मेरी प्रार्थना है—

(भरतवाक्य)

अनुरागवती युवति योग्य रूप और गुणवाले तथा पिता के द्वारा सम्मत युवक को वर रूप में प्राप्त करे (तथा) युवा पुरुष विनय से सम्पन्न और अच्छे कुल में उत्पन्न युवति को (पत्नी रूप में) ग्रहण करे। यही मेरा (प्रभु से) निवेदन है।

अद्भुतपाणिग्रहण की 'कल्याणी' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त।

(सब निकल जाते हैं)

॥ सातवाँ अङ्क समाप्त ॥